Fortnightly per copy Rs. 12/-

18th February 2024

ओ३म्

आर्य जीवन

ఆర్య జీవన్

संस्कृति संरक्षण व सामाजिक परिवर्तन का संकल्प

హిందీ-తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక

Website : http://www.aryasabhaapts.org

Narendra Bhavan Phone No. : 040 24760030

Date of Publication 2nd and 17th of every Month, Date of Posting 3rd and 18th of every Month

चलो हैदराबाद! चलो हैदराबाद!! चलो हैदराबाद!!!

निजाम हैदराबाद के अत्याचारों से संघर्ष करने वाले आर्यों का निमंत्रण

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि के तत्वावधान में

आर्य समाज नलगोंडा के सौजन्य से

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की 200वीं जन्म जयन्ती एवं
आर्य समाज नलगोंडा के शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में

विशाल राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन

दिनांक – 1, 2 एवं 3 मार्च, 2024 ● स्थान – आर्य समाज नलगोंडा, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)

मुख्य अतिथि

विश्व विख्यात योग गुरु
स्वामी रामदेव जी महाराज

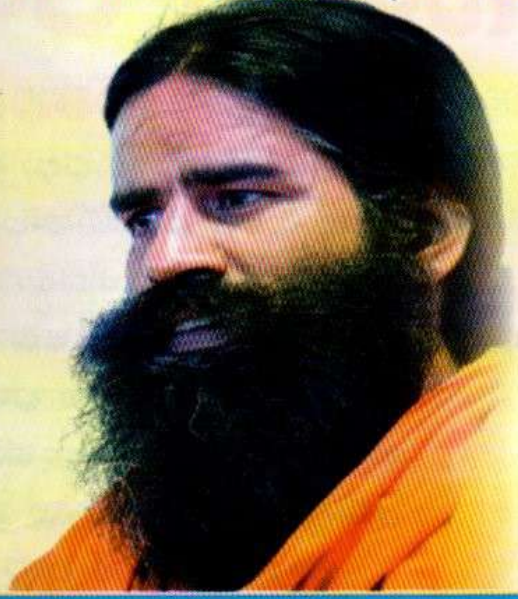

कार्यक्रम

200 कुण्डीय यजुर्वेदीय महायज्ञ का भव्य आयोजन

1 मार्च, 2024 (शुक्रवार) को
सायं 4 बजे से शुभारम्भ

राष्ट्रीय सम्मेलन का उद्घाटन
2 मार्च, 2024 (शनिवार)

राष्ट्रीय सम्मेलन का समापन
3 मार्च, 2024 (रविवार)

ऐतिहासिक शोभा यात्रा 2 मार्च, 2024 (शनिवार) को

इस राष्ट्रीय सम्मेलन में राष्ट्रीय स्तर के आर्य नेता, विद्वान्, प्रसिद्ध भजनोपदेशक तथा यज्ञ को सम्पन्न करवाने के लिए गुरुकुलों के आचार्य/आचार्या, ब्रह्मचारी/ब्रह्मचारिणी आदि पधार रहे हैं। इस आर्य महासम्मेलन में दक्षिण भारत की समस्त आर्य समाजों तथा आर्य परिवारों से और सामाजिक व सांस्कृतिक सुधारवादी परम्पराओं में विश्वास रखने वाले हजारों भाई–बहन पधार रहे हैं। देश के समस्त आर्यजनों से निवेदन है कि उपरोक्त महासम्मेलन में भारी संख्या में प्रधारकर महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की 200वीं जन्म जयन्ती को ऐतिहासिक बनायें। निजाम हैदराबाद के अन्याय एवं अत्याचारों से संघर्ष करने वाली आर्य जनता हजारों की संख्या में महर्षि को स्मरण करने के लिए एकत्रित होगी। आप भी पधारकर इस ऐतिहासिक कार्यक्रम के साक्षी बनें।

स्वामी आर्यवेश
महासम्मेलन अध्यक्ष

प्रो. विट्ठलराव आर्य
महामंत्री सार्वदेशिक सभा

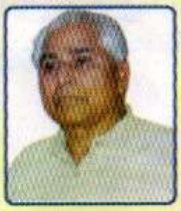

पं. माया प्रकाश त्यागी
कोषाध्यक्ष सार्वदेशिक सभा

स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती
सान्निध्य

निवेदक – आर्य प्रतिनिधि सभा आन्ध्र प्रदेश+तेलंगाना एवं आर्य समाज नलगोंडा ● मो.:–9849560691

॥ ఓ౩మ్ ॥

ఆర్య సమాజము నల్లగొండ 100 సం॥రాలు పూర్తి చేసుకుంటున్న సందర్భంలో

ఆర్య ప్రతినిధి సభ ఆ.ప్ర.-తెలంగాణ సౌజన్యంతో

మహర్షి దయానంద సరస్వతి

ద్విశత జన్మ జయంతి మహాసభలు

1, 2, 3 మార్చి 2024 తేదిలలో నల్లగొండ ఆర్య సమాజ ప్రాంగణంలో జరుగును.

మహాసభలను ప్రారంభించుటకు
విశ్వప్రసిద్ధులైన యోగ గురువు

స్వామి రామ్‌దేవ్ గారు

ముఖ్య అతిథిగా విచ్చేయుచున్నారు.

జాతీయ మహాసభలు మార్చి 2న ప్రారంభింపబడతాయి.
జయంతి సమావేశాలలో ఆర్య సమాజానికి సంబంధించిన
జాతీయ నాయకులు, వేదవిద్వాంసులు, సాధువులు, యజ్ఞ నిర్వాహకులు
భజనోపదేశకులు, గురుకుల ఆచార్యులు, బ్రహ్మచారులు తదితరులు అనేకమంది
ఉత్తర మరియు దక్షిణ భారతదేశము నుండి విచ్చేయుచున్నారు.
జయంతి సమావేశాలు మార్చి 1వ రోజున 200 యజ్ఞకుండాల
యజ్ఞము ద్వారా స్వామి ప్రణవానంద సరస్వతి గారు మరియు
స్వామి ఆర్యవేశ్ గార్ల ఆధ్వర్యంలో ప్రారంభించబడును.
సస్వర వేదపఠనము ద్వారా 200 యజ్ఞకుండాలతో నిర్వహించబడే ఈ యజ్ఞము
ఒక చారిత్రాత్మకమైనది. వేద సంస్కృతిని, భారత సంస్కృతిని దిగ్‌దిగంతరాలకు వ్యాపింపజేసే
ఒక అద్భుతమైన కార్యక్రమం. ఇది భారత సంస్కృతిపైన స్వాభిమానము గల ప్రతి ఒక్కరికి అరుదైన
అవకాశమును కల్పించుచున్నది. కావున తమరందరు మరియు ఆర్య బంధువులు,
ఆర్య సమాజ అధికారులు, కార్యకర్తలు అత్యధిక సంఖ్యలో పాల్గొని
స్వామి దయానంద సరస్వతీ ద్విశత జన్మజయంతి మహాసభలను దిగ్విజయము
చేయగలరని కోరుచున్నాము.

ఆర్య సమాజము
రామగిరి, నల్లగొండ

ఆర్య ప్రతినిధి సభ ఆ.ప్ర.-తెలంగాణ
సుల్తాన్ బజార్, హైదరాబాద్.

Estd. 1931 Reg. No. 6/52 Fasli (old) 1342/84 (New)

॥ ओ३म् ॥

मा निन्दत - निन्दा मत करो (ऋ ४-५-२)

MAHARSHI DAYANAND SARASWATI
Founder of Arya Samaj

आर्य प्रतिनिधि सभा आ.प्र.

तेलंगाना, हैदराबाद

म.नं. ४-२-१५, महर्षि दयानंद मार्ग, सुल्तान बाजार, हैदरायाद-५०० ०९५.

ARYA PRATINIDHI SABHA A.P.

TELANGANA, HYDERABAD

ఆర్య ప్రతినిధి సభ ఆ.ప్ర.

తెలంగాణ, హైదరాబాద్

दिनांक १४-०२-२०२४

हैदराबाद

आत्मीय निमन्त्रण

माननीय प्रधान जी / मन्त्री जी

आर्य समाज.....

सप्रेम प्रणाम ।

मान्यवर महोदय,

स्वामी दयानन्द सरस्वती की २००वीं जन्मशति इस वर्ष बोध दिवस के साथ पूरी होने जा रही है । आपको विदित है कि स्वामी दयानन्द की २००वीं जन्मशति समारोह का प्रारम्भ भारत के प्रधानमन्त्री माननीय श्री नरेन्द्र मोदि जी ने किया था । पिछले एक वर्ष से लगातार कई संस्थाओं ने तथा प्रतिनिधि सभाओं में अपने अपने तरीके से २००वीं जन्मशति को मनाकर स्वामी दयानन्द सरस्वती को याद करने का प्रयास किया है ।

आर्य प्रतनिधि सभा आ.प्र.-तेलंगाना द्वि शति जन्म समारोह को पूरे राष्ट्रीय स्तर के साथ साथ विशेषकर दक्षिण भारत की सारी समाजों को मिलाकर (जो पूर्व में मध्य दक्षिण आर्य प्रतिनिधि सभा के तहतर रही है) सम्मिलित रूप से राष्ट्रीय आयोजन को करने का निर्णय लिया है । यह समारोह १, २, ३, मार्च २०२४ को होगा । १ मार्च २०२४ की सायंकाल ४-०० बजे २०० कुण्डीय यजुर्वेदीय यज्ञ के साथ प्रारम्भ होगा और २ मार्च २०२४ को राष्ट्रीय समारोह का उद्घाटन होगा । इस बीच दक्षिण भारत के हैदराबाद शहर से १०० कि.मी. दूर नलगोण्डा आर्य समाज के प्रांगण में स्वामी दयानन्द सरस्वती की २००वीं जन्मशति समारोह का आयोजन राष्ट्रीय स्तर पर किए जाने की बात चर्चा में आई । राष्ट्रीय समारोह का आयोजन कर स्वामी रामदेव जी को मुख्य अतिथि के रूप में निमन्त्रित करने का निर्णय लिया गया और स्वामी जी से इस समारोह का उद्घाटन करवाने का भी निश्चय किया गया । स्वामी रामदेव जी ने हमारी प्रार्थना को स्वीकार किया और राष्ट्रीय आयोजन का उद्घाटन स्वामी रामदेव जी के द्वारा सम्पन्न होगा ।

निज़ाम काल के दौरान निज़ाम के अत्याचारों के खिलाफ **आर्य समाज** ने बढ़-चढ़ करके भांग ही नहीं लिया था बल्की पूरी लड़ाई लड़ी थी । इस पूरे संघर्ष में कर्नाटक व मरठवाड़ा प्रान्त की आर्य समाजों के साथ तेलंगाना

Door No. 4-2-15, Maharshi Daanand Marg, Sultan Bazar, Hyderabad-500 095.
Phone No. 040-66758707, 24753827, 24756983
Email : acharyavithal@gmail.com Cell : 09849560691

प्रान्त की आर्य समाजों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है और निज़ाम राज्य की राजधानी हैदराबाद, निज़ाम के द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों केन्द्र बिन्दु रहा है। इस पूरे मुक्ति संघर्ष में आर्य समाज नलगोण्डा का भी बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। नलगोण्डा एक समृद्ध आर्य समाज है और यह समाज अपनी स्थापना के १०० वर्ष भी पूरे कर रहा है। १०० वर्ष पूरे करने के उपलक्ष में आर्य समाज नलगोण्डा स्वामी दयानन्द सरस्वती की २००वीं जन्मशति समारोह का आयोजन नलगोण्डा प में करने का आग्रह किया। नलगोण्डा शहर की आबादी २ लाख है और नलगोण्डा जिले की आबादी लगभग २० लाख है। निज़ाम का राज्य आज के तेलंगाना, मरठवाड़ा तथा उत्तर कर्नाटक के जिलों तक फैला हुआ था। निज़ाम के अत्याचारों के खिलाफ पूरे हिन्दू समुदाय की रक्षा के लिए आर्य समाज ने १९३८-३९ में आर्य सत्याग्रह चलाया था जिसमें पूरे भारतभर से लगभग १२ हज़ार सत्याग्रहियों ने भाग लिया था, जिसका नेतृत्व सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्कालीन अध्यक्ष महात्मा नारायण स्वामी जी ने किया था। पश्चात् और नेंताओं के साथ-साथ स्थानीय नेता पं. नरेन्द्र जी तथा पं. विनायकराव विद्यालंकार जी ने नेतृत्व किया। अन्त में निज़ाम को घुटने टेकने पड़े थे पश्चात् यह संघर्ष इस प्रान्त को निज़ाम से व निज़ाम के रज़ाकारों से आज़ादी दिलाने तक चलते रहा। आपको विदित हो कि यह प्रान्त १५ अगस्त १९४७ को नहीं बल्कि १७ सितम्बर १९४८ को आज़ाद हुआ। यह मुक्ति संघर्ष बहुत ही लम्बा रहा जिसमें कई आर्य समाजें कार्यकर्ताओं ने अपने आपको शहीद किया। इस पूरे संघर्ष में कर्नाटक व मरठवाड़ा प्रान्त की आर्य समाजों के साथ तेलंगाना प्रान्त की आर्य समाजों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यह शहीदों की धरती है और ऐतिहास रक्त रंजित रहा है।

ऐसी धरती पर स्वामी दयानन्द सरस्वती को याद किया जाना आवश्यक है और यह जयन्ती समारोह ऐतिहासिक रहेगा तथा आपके जुड़ाव से, हिस्सेदारी से तथा स्वामी रामदेव जी के माध्यम से कई युवाओं के लिए प्रेरणा का स्रोत भी बना रहेगा। इस समारोह को ऐतिहासिक बनाने के लिए बड़े भारी स्तर पर तय्यारियां की जा रही है। हमें उमीद है कि हज़ारों की संख्या में उपस्थिति रहेगी। न केवल तेलंगाना से बल्कि **कर्नाटक व मरठवाड़ा** के निज़ाम क्षेत्र से बड़ी भारी संख्या में आर्य बन्धु व सामान्य लोग अपनी उपस्थिति दर्ज करवाएंगे।

आपसे सविनय निवेदन कि आप अपना अमूल्य समय देकर तथा भारी संख्या में उपस्थित होकर इस समारोह को सफल बनाए। स्वामी रामदेव जी समारोह का उद्घाटन दूसरी मार्च को करेंगे। आपकी समाज की ओर से भारी संख्या में उपस्थिति होने की हमें उमीद है। आपकी उपस्थिति के लिए हम आपके हमेशा आभारी रहेंगे।

धन्यवाद

आपका

श्री हरिकिशन वेदालंकार
मन्त्री, आर्य प्रतिनिधि सभा,
आ.प्र.-तेलंगाना

प्रो. विट्ठल राव आर्य
प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा, आ.प्र.-तेलंगाना व
महामन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली

बौद्धधर्म का आधार वैदिकधर्म है

महात्मा बुद्ध की शिक्षा का उद्देश्य किसी नवीन धर्म की स्थापना करना नहीं था

-पं. गंगाप्रसाद, चीफ जस्टिस

हमने ईसाईमत के निकास का पता लगाया है। हमने यह बात सिद्ध की है कि उसके धार्मिक सिद्धान्त यहूदीमत पर और सदाचारिक उपदेश बौद्ध धर्म पर निर्भर हैं। अन्त के दो अध्यायों में इस बात का उल्लेख किया जाएगा कि. जरदुश्ती मत के द्वारा यहूदी धर्म की उत्पत्ति वेद से है। इस अध्याय में यह बात सिद्ध की जाएगी कि बौद्धधर्मया सदाचार सम्बन्धी उन उपदेशों का संग्रह-जिनका महात्मा बुद्ध ने प्रचार किया और जो ईसाई-मत के अभ्युत्थान में बहुत कुछ सहायक हुए सीधा वेदों से निकाला है। यह बात कदाचित् उन वेदानुयायियों को आश्चर्य का कारण होगी जो बौद्धधर्म को वैदिकधर्म का विरोधी मानते हैं। यह निश्चित है कि बुद्धदेव ने कभी नवीन धर्म की स्थापना का विचार तक नहीं किया। श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त जो महात्मा बुद्ध की प्रशंसा करने में किसी से कम नहीं हैं स्वीकार करते हैं कि बुद्ध भगवान् ने कोई नवीन आविष्कार या नई ज्ञानोपलब्धि नहीं की थी। वे फिर लिखते हैं कि "यह कल्पना करना एक ऐतिहासिक भूल होगी कि बुद्ध भगवान् ने जानबूझ कर किसी धर्म विशेष का प्रवर्तक या आचार्य बनना चाहा। इसके विरुद्ध उनका तो अन्त समय तक यह विश्वास रहा कि वे उस प्राचीन पवित्र धर्म के सुन्दर स्वरूप का प्रकाश कर रहे हैं जो हिन्दू ब्राह्मण श्रमण और अन्य लोगों में प्रचलित था, परन्तु पीछे से बिगड़ गया था। यह बात यथार्थ है कि हिन्दू धर्म में ऐसे परिव्राजक, साधु-संन्यासी उपस्थित थे जो संसार को त्याग कर और वेदोक्त यज्ञादि न करते हुए केवल ध्यान में अपना समय व्यतीत करते थे। हिन्दू-धर्मशास्त्रों में ऐसे साधुओं की 'भिक्षु' संज्ञा थी और साधारणतया उन्हें 'श्रमण' कहते थे। उस काल की अनेक श्रमणशाखाओं में से गौतमबुद्ध ने केवल एक श्रमणसाखा की स्थापना की थी, जो औरों से पहचान के लिए "शाक्यपुत्रीय श्रमण" के नाम से पुकारी जाती थी। बुद्ध ने उनको संसार त्याग, विशुद्ध जीवन, पवित्र धार्मिक विचार आदि उन्हीं बातों की शिक्षा दी जिनका उस समय के समस्त श्रमण लोग उपदेश और अनुष्ठान करते थे[9]।"

२. बौद्ध धर्म के एक पृथक् धर्म बन जाने का कारण-

अब यह प्रश्न हो सकता है कि महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं ने नवीन अथवा पृथक् धर्म का रूप क्यों धारण कर लिया ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें उस समय के वैदिक धर्म की अवस्था जानने की आवश्यकता है जब बुद्ध भगवान् विद्यमान थे और अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते थे।

बुद्ध के प्रादुर्भाव से कुछ पूर्व वैदिक धर्म के इतिहास में घोर अन्धकार का समय था। वेद और उपनिषदों का पवित्र और प्रशस्त धर्म अवनत होकर निरर्थक कृत्य और हिंसापूर्ण "यज्ञादि" का स्वरूप ग्रहण कर चुका था। वैदिक वर्ण-व्यवस्था (जो आरम्भ में गुण कर्मानुसार थी) बिगड़ कर वंश परम्परागत जातिभेद में परिवर्तित हो गई थी। इसका यह परिणाम हुआ कि ब्राह्मण लोगों ने केवल 'जन्म से' अपने को बड़ा मान कर वेदाध्ययन तथा उन सद्गुणों को त्याग दिया जिनके कारण उनके पूर्वजों की समुचित प्रतिष्ठा की जाती थी। यह सदाचारिक और धार्मिक अधःपतन केवल ब्राह्मणों तक ही परिमित न रह सका। संन्यासी लोग भी धार्मिक ज्ञान, आन्तरिक पवित्रता, मधुर शीलता आदि बातें छोड़ कर तपस्या का केवल बाहरी आडम्बर दिखलाने को रखते थे। साधारण लोग भी वैसे सीधे, सच्चे, पवित्र और सद्गुण सम्पन्न न रहे जैसे कि वैदिक काल में थे। वे लकीर के फकीर और विलास प्रियता के चेले बन गए। प्राचीन आर्यों के सात्त्विक भोजन का स्थान आमिषाहार ने छीन लिया। उसे शास्त्रोक्त सिद्ध करने के अभिप्राय से यज्ञों में पशुओं का वध किया जाता था और उनके माँस से आहुति दी जाती थी।

बुद्ध के प्रादुर्भाव के समय वैदिक धर्म या यों कहिए कि आर्यों की सामाजिक स्थिति इस प्रकार की हो गई थी। बुद्धदेव के हृदय पर पशु बलिदान और जातिभेद--इन दो बुराइयों का बड़ा प्रभाव पड़ा। उनका कोमल और प्रेमपूर्ण हृदय धर्म के नाम पर इतने निरपराध पशुओं के रक्त प्रवाह को न सह सका। उनकी पवित्र आत्मा इस निकृष्ट और अन्याय पूर्ण जाति-भेद के विरुद्ध संग्राम करने को उद्यत हो गई। और इसमें उन्होंने मनुष्य मात्र के लिए सच्चा प्रेमी और उनके आधार के लिए विशेष उत्साह दिखलाया। वस्तुतः यह बुराई इतनी अधिक हो गई थी कि बुद्ध भगवान् के पूर्ववर्ती अनेक ग्रन्थकारों ने भी उसे बुरा कहा था। सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक सब बातों में इस जातिभेद की व्यापकता होगई थी। यहाँ तक कि देश के कानून पर भी प्रभाव पड़ चुका था। उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के लिए पृथक्-पृथक् कानून बन गए थे। ब्राह्मणों के ऊपर अनुचित दया और शूद्रों के साथ अनुचित कठोरता का व्यवहार किया जाता था, ये बातें बहुत दिनों तक नहीं ठहर सकती थीं। शूद्र कितने ही धार्मिक और गुणवान् क्यो न हों, परन्तु न तो उन्हें धार्मिक शिक्षा देने का ही कहीं प्रबन्ध था और न उनकी समाज में ही कुछ प्रतिष्ठा थी। वे लोग इन बेड़ियों को तोड़ फेंकने के अवसर की ताक में बैठे थे। वे उस निर्दयी प्रथा के फन्दे में फँसे हुए थे जिसने उन्हें उच्च सोसाइटी के संसर्ग से बुरी तरह बहिष्कृत कर रक्खा था, उनकी लालसा थी कि इस स्थिति में परिवर्तन हो। द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों

में भी ऐसे अनेक उच्चाशय उदार प्रकृति पुरुष थे जो उनकी इस लालसा से सहानुभूति रखते थे । अत एव 'क्रान्ति' का समय आ गया था । और इस विचार के लिए असाधारण दूरदर्शिता की आवश्यकता न थी कि समय आएगा जबलोग इस हानिकर प्रथा के विरुद्ध युद्ध मचाकर अपनी बेड़ियों को तोड़ डालेंगे । वह अवसर आ गया । राजकुलोत्पन्न एक क्षत्रिय ने घोषणा की, कि समाज में मनुष्य की स्थिति जन्म से नहीं प्रत्युत गुणों से होती है । असंख्य मनुष्य उसके चारों ओर एकत्रित हो गए । ऐसी दसा में हम सहज ही इस बात का अनुमान कर सकते हैं कि अत्याचार के भार से दबे हुए शूद्र लोग किस उत्साह से उनकी बातें सुनते होंगे । बहुत से द्विजन्मे आर्य लोग भी उनके पवित्र धार्मिक उद्देश्य से सहमत हो गए और बौद्ध धर्म देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैल गया ।

महात्मा बुद्ध की सफलता तथा बिना इच्छा के भी उनके एक नवीन धर्म का प्रवर्त्तक बनजाने का ठीक कारण ऊपर कहा गया है । समाज संशोधक अन्य महापुरुषों के समान बुद्ध भी बहुत अंश तक अपने समय के सुधारक थे । अविवेक-पूर्ण और निर्दय पशुवध तथा कृत्रिम और अपवित्र जातिभेद का साहस पूर्ण खण्डन करनें बुद्धदेव ने ऐसे तारको खींचा जिससे उनके समकालीनों के हृदय उनकी ओर आकर्षित हो गए । यदि उनका जन्म ऐसे समय में हुआ होता जब वे बुराइयाँ न होतीं तो उनका बहुत ही कम प्रभाव पड़ता और सच तो यह है कि उन्हें अपने सुधार सम्बन्धी कामों के लिए अवसर ही न मिलता, परन्तु जिन दिनों उनका जन्म हुआ उन दिनों उन्होंने सहज में बहुसंख्यक लोगों को अपनी ओर कींच लिया और इस प्रकार धीरे-धीरे वे एक नवीन धर्म के संस्थापक समझे जाने लगे ।

३. बौद्धधर्म का विनाशक अथवा निषेधात्मक अंग-

महात्मा बुद्ध की शिक्षा के निषेधात्मक भाग के सम्बन्ध में केवल इतना ही कहने की आवश्यकता है । उन्होंने विशेषतः दो अत्याचारों पर प्रबल रूप से आक्रमण किया । दत्त महाशय लिखते कि- ''गौतम अविचार पूर्वक खण्डन करने वाले न थे और न सब प्राचीन प्रचलित प्रथाओं के अचेत और कट्टर विरोधी ही थे । उन्होंने उस समय तक किसी प्रथा या विश्वास के विरुद्ध हाथ नहीं उठाया जबतक कि उसको अनुपयोगी अथवा प्राचीन धर्म में पीछे का मिलाव न समझ लिया हो । उन्होंने जाति-पांति का विरोध इस कारण किया कि वे उसको हानिकारक और प्राचीन **ब्राह्मण धर्म के पश्चात् का बिगड़ा हुआ रूपान्तरण समझते थे** । उन्होंने वैदिक (यज्ञादि) कृत्यों की निरर्थकता इसलिए प्रकट की कि उस समय **उनकी विधि** बहुत ही मूर्खतापूर्ण, निरर्थक, निकृष्ट रूप में थी और उनमें अनावश्यक निर्दयतापूर्वक पशुओं के प्राणहरण किए जाते थे ।

यह प्रशन हो सकता है कि क्या महात्मा बुद्ध ईश्वर का अस्तित्व अथवा वेदों को ईश्वरीय ज्ञान या प्रामाणिक पुस्तक मानते थे ? ईश्वर-विश्वास के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि वे नास्तिक नहीं थे, शायद अज्ञेयवादी Agnostic थे । ईश्वर या ईश्वरीय ज्ञान का न मानना बौद्ध धर्म का कोई आवश्यक सिद्धान्त नहीं है । ऐसा ज्ञात होता है कि उन्होंने आत्म सुधार और आत्म संयम आदि के उपदेश करने पर ही सन्तोष किया और सृष्टि सम्बन्धी ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर सोचने की चेष्टा ही नहीं की कि ''क्या यह संसार अनादि और अनन्त है ? यदि नहीं तो उसकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई ?'' कदाचित् उनका यह विचार हो कि इन प्रश्नों के उत्तर कदापि सन्तोषजनक नहीं मिल सकते । उनके शिष्यों ने इस विषय में जानने के लिए अनेक बार उनसे आग्रहपूर्वक[२] जिज्ञासा की, परन्तु उन्होंने कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया ।

निश्चय ही बौद्ध ग्रन्थों में अनेक स्थल[३] हैं जिनसे प्रकट होता है कि उन्होंने अपने शिष्यों को इस प्रकार की जिज्ञासा और शास्त्रार्थ करने के लिए समय ही नहीं दिया ।

सब्बासबसुत्त-में ऐसे विषयों पर विवाह विवाद करनेवाले का वर्णन इस प्रकार किया गया है-

''वह मूर्खता से ऐसे विचार करता है कि भूतकालों में था या नहीं ? मैं भूत काल में क्या था ? मैं भविष्य काल में रहूँगा या नहीं ? भविष्यत् काल में मेरा क्या स्वरूप होगा ? या वर्त्तमान के लिए भी अपने मन में ऐसे विचार करता है मेरा अस्तित्व वास्तव में है या नहीं ? मैं क्या हूँ ? यदि मेरा अस्तित्व है तो कहाँ से आया और कहाँ जाएगा ?''[१]

उनके विचार में भलाई करना ही धर्म था या यों कहिए कि उन्होंने धर्म के कर्मकाण्ड सम्बन्धी भाग की ओर ही दृष्टि रक्खी और ज्ञान काण्ड तता आध्यात्मिक भाग की ओर से सर्वदा उदासीन रहे । प्रारम्भिक बौद्ध धर्म में यह बड़ी भारी निर्बलता थी । इस प्रकार के प्रश्न उठते ही हैं और उनके उत्तर किसी न किसी रूप में देने ही चाहिए । जो धर्म इन बातों को टालना चाहता वा उनकी उपेक्षा करता है वह मनुष्य के आत्मा की भूख को नहीं बुझा सकता, परन्तु पिछले समय के बोद्धों ने इस त्रुटि की यह कहकर पूर्ति करदी कि संसार जैसा कि अब है वैसा ही अनादिकाल से चला आता है, अत एव इसके लिए रचने वाले की आवश्यकता नहीं । इस प्रकार उन्होंने अपने धर्म को विशुद्ध नास्तिक बना दिया, परन्तु महात्मा बुद्ध का यह मन्तव्य न था, वे न तो संसार को नित्य ही कहते थे और न अनादि । यद्यपि बौद्ध धर्म प्रारम्भ में अज्ञेयवादी था, परन्तु अन्य अज्ञेयवादी मतों सदृश यह अन्त में नास्तिक मत हो गया । जैसा कि पूर्व कह चुके हैं कि उनकी सदाचारिक शिक्षा कैसी ही उत्तम क्यों न हो, परन्तु धर्म की दृष्टि से वह एक बहुत बड़ा दूषण था । इस दोष के कारण ही अन्ततः भारत वर्ष में उसके भाग्य का अन्त हो गया । बौद्ध धर्म प्रारम्भ में अत्याचार पूर्ण जाति-भेद और निर्दय पशुवध के विपरीत पवित्र विरोध करने तथा

१. Ancient India, vol. 11.

२. उदाहरणार्थ-एक समय मलयूक्य पुत्त नामक किसी व्यक्ति ने महात्मा गौतम से यह प्रश्न किया, परन्तु उन्होंने उत्तर दिया कि 'हे मलयूक्य पुत्त ! तुम आओ और मेरे शिष्य बन जाओ, मैं तुमको इस बात की शिक्षा दूँगा कि संसार नित्य है या नहीं ।' मलयूक्य पुत्त ने कहा 'महाराज अपने ऐसा नहीं कहा ।' बुद्ध जी बोले- 'तो फिर इस प्रश्न को पूछने में आग्रह मत करो ।' (देखो मज्झम निकाय कुल मलूक्यवाद) Quoted in Ancient India, vol. II, 239

३. दखो सुत्त निपात, पशु सुत्त और सुत्त, निपात, माह मोह सुत्त ।

सदाचार और भलाई का सर्वसाधारण को उपदेश देनेके कारण ही इस देश में फैल गया था, परन्तु नास्तिक मत बन जाने के कारण ही इस देश में फैल गया था, परन्तु नास्तिक मत बन जाने के कारण वह इस देश से बहिर्गत कर दिया गया ।

ईश्वर की सत्ता और वेदों के ईश्वर कृत होने के विषय पर महात्मा बुद्ध के विचार **तेविज्जसुत्त** से जाने जाते हैं, जिसके सम्बन्ध में महाशय राईस डैविड्स (Rhys Davids) अपने अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में इस प्रकार लिखते हैं- ''इस सुत्त का नाम **तेविज्ज सुत्त** केवल इसलिए है कि इसमें गौतम का वर्णन **तेविज्ज** उपनाम से किया गया है । **तेविज्ज** का अर्थ है वेदों का ज्ञाता और यह पाली शब्द **तैविद्य** या **त्रयोविज्ञ** शब्द का अपभ्रंश है ।

इस सुत्त आरम्भ दो ब्राह्मण युवक वसिष्ठ और भारद्वाज के विवाद से होता है । विषय यह है कि ब्रह्म-प्राप्ति का सच्चा मार्ग क्या है ? वे दोनों गौतम बुद्ध को पास जाते हैं, जो ये बतलाते हैं कि यदि कोई ब्राह्मण वेदों को अच्छी तरह पढ़ा हो, परन्तु सदाचारी न हो तो वह ब्रह्म को प्राप्त नहीं कर सकता । इस सुत्त के कुछ वचन नीचे दिए जाते हैं-

२५-हे वसिष्ठ ! इस प्रकार वे ब्राह्मण जो तीनों वेदों को पढ़कर भी उन गुणों का तिरस्कार करते हैं जिनसे मनुष्य ब्राह्मण बनता है और वे ऐसा पाठ करते हैं-'हम इन्द्र को पुकारते हैं, सोम को पुकारते हैं, वरुण को पुकारते हैं, ईशान को पुकारते हैं, प्रजापति को पुकारते हैं, ब्रह्मा को पुकारते हैं, महिद्धि को पुकारते हैं, यम को पुकारते हैं' । वसिष्ठ ! ये कभी सम्भव नहीं कि वे ब्राह्मण जो वेद पढ़े हुए हैं, परन्तु उन गुणों का तिरस्कार करते हैं जिनसे मनुष्य वास्तव में ब्राह्मण बनता है और उन गुणों को धारण करते हैं जिनसे मनुष्य अब्राह्मण बनता व केवल स्तुति और प्रार्थना के कारण मृत्यु के पश्चात् जब शरीर छूट जाता है ब्रह्म को प्राप्त हो सके ।

२७-हे वसिष्ठ ! इसी प्रकार पाँच पदार्थ कामकी ओर ले जानेवाले हैं जो 'आर्य्य संयम' में बन्धन कहलाते हैं ।

प्रश्न-वे पाँच पदार्थ क्या है ?

उत्तर-रूप जो आँख को प्रिय, रोचक और आनन्द दायक होते हैं, परन्तु काम और मद को उत्पन्न करते हैं, इसी प्रकार के शब्द जो कान से सुने जाते हैं, इसी प्रकार की गन्ध जिनको नासिका ग्रहण करती है, इसी प्रकार के रस जिनको जिह्वा ग्रहण करती है, इसी प्रकार के अन्य पदार्थ जिनका शरीर को स्पर्श से अनुभव होता है । इन पाँचों पदार्थों से काम की उत्पत्ति होती है और ये आर्य्य संयम में बन्धन कहलाते हैं । और हे वसिष्ठ ! वे ब्राह्मण जो वेद पढ़े हैं, परन्तु इन पाँचों पदार्थों के दास हैं जिनसे काम उत्पन्न होता है वे इनमें उन्मत्त हो जाते हैं, पतित हो जाते हैं और यह नहीं समझते कि वे कैसे भयङ्कर पदार्थ हैं और उनमें आनन्द मानते हैं ।

२८-''हे वसिष्ठ ! यह सम्भव नहीं कि वे ब्राह्मण जो वेद पढ़े हैं, परन्तु उन गुणों का तिरस्कार करते हैं जिनसे मनुष्य वास्तव में ब्राह्मण बनता है और उन गुणों को धारण करते हैं जिनसे मनुष्य वास्तव में अब्राह्मण बनता है और इन पाँच पदार्थों के दास हैं जिनसे काम उत्पन्न होता है, उनमें उन्मत्त होते हैं, पतित होते हैं और उनके भयङ्कर स्वरूप को न समझते हुए उनमें आनन्द मानते हैं । ये ब्राह्मण मरने के पीछे शरीर छूटने पर ब्रह्म को प्राप्त कर सकें यह सम्भव नहीं ।''

इसके आगे महात्मा बुद्ध, वसिष्ठ के ब्रह्म के गुणों के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न करके ऊपर कहे हुए नामधारी ब्राह्मणों के गुणों से अन्तर दिखलाते हैं और इस प्रकार उपदेश करते हैं-

३७-''अच्छा वसिष्ठ ! तुम यह सम्भव नहीं कि ये ब्राह्मण वेद पढ़े होने पर भी अपने हृदय में क्रोध और द्वेष धारण किए हैं, जो पापी और असंयमी हैं, मरने के पीछे शरीर को छोड़ने पर उस ब्रह्म को प्राप्त कर सके जो क्रोध और द्वेष रहित, पाप रहित संयम स्वरूप है[1]।''

इसके पश्चात् एक सच्चे भिक्षु के जीवन का वर्णन करके महात्मा बुद्ध इस प्रकार उपदेश करते हैं-

३९-अच्छा वसिष्ठ ! तुम मानते हो कि यह भिक्षु क्रोध और द्वेष से रहित है, शुद्ध चित्तवाला और संयमी है और ब्रह्म भी क्रोध और द्वेष से रहित, शुद्ध स्वरूप और संयम स्वरूप है तो हे वसिष्ठ ! यह हर प्रकार सम्भव है कि वह भिक्षु जो क्रोध और द्वेष से रहित है शुद्ध चित्तवाला और संयमी है, मरने के पीछे शरीर छोड़ने पर ब्रह्म को प्राप्त कर सके जिसका वैसा ही स्वरूप है ।''

यह स्पष्ट है कि इस सुत्त[2] में महात्मा बुद्ध में वेदों की निन्दा नहीं की, किन्तु अपने समय के उन ब्राह्मणों की निन्दा की है जो वेदों के जानने का अभिमान करते हुए ब्राह्मणों के गुणों से रहित थे । महाशय राईस डैविड ने उनकी तुलना बाइबिल फ़ारसियों और लेखकों Phorisees and Scribes से की है ।

यदि महात्मा बुद्ध ईश्वर के विषय में सन्दिग्ध थे तो ईश्वरीय ज्ञान पर भी विश्वास न कर सकते थे । वेदों से उनका विरोध भी नहीं था, किन्तु उदासीनता थी । इस उदासीनता का कुछ तो यह कारण था कि वेद से अनभिज्ञ थे और कुछ उस समय का यह विश्वास कि वेद पशुवध और जातिभेद की आज्ञा देते हैं । यदि वे वेदवेत्ता होते यदि उन्होंने प्रेमभाव और समानता के उपदेशों का वेदों के विशुद्ध अर्थों की प्रामाणिकता के आधार पर प्रचार किया होता तो वे नए धर्म के संचालक न होकर हमारे ही समय के स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे वैदिक सुधारक बन जाते । यदि उस समय के लोग कुछ कम संकुचित विचारों के होते, वेद की अपेक्षा अपने ही धर्म का संशोधन करते तो प्राचीन धर्म के होते हुए देश में नवीनमत स्थापित होने की दुर्घटना न हो पाती और इस प्रकार भारतवर्ष में फूट न फैलती जिसके कारण चिरकाल तक दोनों मतों के अनुयायियों के मध्य भीषण युद्ध की अग्नि चलती रही ।

४. बौद्ध धर्म का विधायक अथवा विद्यात्मक अंग-

महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं के विधायक-भाग के सम्बन्ध में हमें अधिक कुछ नहीं कहना । उन्होंने वैदिक धर्म-विहित बातों का उपदेश किया अर्थात् आत्म सुधार, आत्म

१. देखो 'बौद्ध सुत्त' Budhist Suttas (Sacred Books of the East Series पृ. १८०-१८५)

२. देखो ''बौद्ध सुत्त'' पृ. ३०२

संयम, मनुष्य जाति औ प्राणि मात्र के प्रति मैत्रीभाव, शुभ कर्म और आन्तरिक पवित्रता का प्रचार किया। बुद्ध ने जिन चार प्रधान बातों का उपदेश दिया वे निम्न लिखित हैं-

१-जीवन दुःखमय है, २-दुःख का कारण इच्छा वा तृष्णा है। ३-तृष्णा के नाश से दुःखकी निवृत्ति होती है। ४-तृष्णा के नाश के नीचे लिखे आठ प्रकार के मार्ग हैं-

१) सत्य विश्वास, २) सत्य कामना, ३) सत्य भाषण, ४) सत्याचरण, ५) सत्य जीविका साधन, ६) सदुद्योग, ७) सत्य संकल्प और, ८) सत्य विचार[1]

हमें यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त बातों का वैदिक धर्म और दर्शन शास्त्र स्बन्धी विविध पुस्तकों में अनेक बार वर्णन आया है। उदाहरणार्थ हम न्याय दर्शन का दूसरा सूत्र उद्धृत करते हैं-

दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमित्याज्ञानानामुत्त रोत्तरा पाये तदनन्तरा पायादपवर्गः ।

-न्याय १।१।३

दुःख, जन्म, प्रवृत्ति, दोष और मिथ्या ज्ञान इनमें से एक के नाश से उससे पूर्व पूर्व वर्णित नष्ट हो जाता है और दुःख का निवारण ही मुक्ति है।

इसका भावार्थ यह है कि मिथ्या ज्ञान से दोष वा बुरी इच्छाएँ होती हैं, उसमें जन्म की प्रवृत्ति होती है और जन्म ग्रहण करना पड़ता है और यह जन्म ही दुःखों की जड़ है। इसी क्रम से एक की निवृत्ति होने से दूसरे की निवृत्ति होती चली जाती है। अर्थात् जन्म व जीवन के साथ दुःख का सम्बन्ध अवश्य है। (बुद्ध का प्रथम उपदेश) दुःख और जन्म का कारण जीवन की इच्छा या तृष्णा है। (दूसरा उपदेश) इच्छा और जन्म-प्रवृत्ति नष्ट होने पर दुःख की निवृत्ति हो जाती है। (तीसरा उपदेश) इच्छा और जन्म-प्रवृत्ति का नाश सत्य ज्ञान द्वारा होता है। (चौथे उपदेश का भाग)

निम्न लिखित पाँच आज्ञाओं का पालन करना समस्त बौद्धों का, चाहे भिक्षु हों वा गृहस्थ, परम कर्त्तव्य है-

१) किसी प्राणी की हिंसा न करे। २) उस वस्तु को ग्रहण न करे जो उसे नहीं दी गई। ३) मिथ्या भाषण न करे। ४) मादक द्रव्यों का सेवन न करे। ५) व्यभिचार न करे।

दत्त महाशय लिखते हैं कि 'ये निस्सन्देह वसिष्ठ के पञ्च महापातकों से सूझी है'[1]।

परन्तु हम इन पाँचो का सम्बन्ध महर्षि पतञ्जलि रचित योग सूत्र के पाँच यमों से समझते हैं-

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।

योग अ. १।पा.२।सू.३०॥

जीवों की हिंसा न करना, असत्य भाषण न करना, चोरी न करना, व्यभिचार न करना, विषय-भोग अथवा इन्द्रिय-लोलुपता में अधिक न फंसना, ये पाँच यम हैं।

बौद्ध धर्म जिसका बुद्ध ने प्रचार किया केवल सदाचार का उपदेश है अन्य कुछ नहीं। बौद्ध धर्म के सदाचारिक उपदेशों का पता वैदिक धर्म की पुस्तकों से सहज ही में लगाया जा सकता है। दत्त महाशय लिखते हैं कि बौद्ध धर्म ने यह पवित्र पैतृक सम्मपत्ति प्राचीन हिन्दुओं से प्राप्त की और अपने पवित्र साहित्य में सुरक्षित कर ली। महात्मा गौतम द्वारा निर्धारित धर्मों में वे समस्त बातें पाई जाती हैं जो धर्म सूत्रों में सर्वोत्कृष्ट और सर्वोत्तम हैं।[1]

प्रोफेसर मैक्समूलर महात्मा बुद्ध के सम्बन्ध में लिखते हैं- "ब्राह्मणों की ओर से उनके विरोध की बहुत कुछ अत्युक्ति की गई है और सब हम इस बात को जान गए हैं कि गौतम बुद्ध के बहुत से उपदेश वास्तव में उपनिषदों के ही उपदेश थे[2]।"

हमने यह सिद्ध किया कि महात्मा बुद्ध ने किसी **नवीन धर्म** या **नवीन ज्ञान** का प्रचार नहीं किया। उन्होंने कुछेक उन दूषणों का खण्डन किया जो सत्य वैदिक धर्म के अंग नहीं थे पर जो पीछे से उसमें मिल गए थे। अन्य बातों में उन्होंने वैदिक धर्म के उपदेशों का प्रचार किया। अतएव बौद्ध धर्म हमारा जिससे अभिप्राय है वह गौतम की उत्कृष्ट शिक्षा है, जो वैदिक धर्म पर अवलम्बित है।

१. देखो महावाक्य ६ Quoted in Ancient India, vol. 11 p. 2. 1.

धर्म का तात्पर्य

धर्म की सुरक्षा से ही मनुष्यों की सुरक्षा है, इसके विनाश से ही मनुष्यों का विनाश अवश्यभावी है तो यह प्रश्न भी उपस्थित होता है कि धर्म किसे कहते हैं ? इसका क्या तात्पर्य और गूढ़ रहस्य है जिसके कारण मनुष्यों का जीवन सुरक्षित रहता है। महर्षि व्यास ने धर्म का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है कि अपने आत्मा के विपरीत आचरण दूसरे व्यक्तियों के साथ मत करो। यह धर्म का सार या निचोड़ है।

श्रूयतां धर्म-सर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥

-महा.

अर्थात् कोई व्यक्ति हमारे साथ झूठ बोले, धोखेबाजी करे, या हमको कष्ट पहुन्चावे अथवा हमारे से बिना पूछे हमारे किसी वस्तु को लेवे तो यह इसको अच्छा नहीं लगता है। इसलिए हमें भी किसी की वस्तु बिना पूछे नहीं लेनी चाहिए, किसी को कष्ट नहीं देना चाहिए। किसी के साथ धोखेबाजी नहीं करनी चाहिए या मिथ्या नहीं बोलना चाहिए। इस प्रकार के आचरण करने को धर्म कहते हैं यही धर्म का सार है।

धर्म का लक्षण :- महर्षि मनु ने धर्म के लक्षणों का विवेचन करते हुए लिखा है कि वेद-स्मृति ग्रन्थ, सदाचार और दूसरों के द्वारा हमारे साथ किया जाने वाला अच्छा व्यवहार जो हमें अच्छा लगता है इस प्रकार का व्यवहार दूसरों के साथ करना ये धर्म के साक्षात् हैं।

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः। एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम् ॥ -मनु.

अर्थात् अपनी आत्मा के अनुकूल अच्छा व्यवहार दूसरों के साथ करना, सदाचार का पालन करना, ऋषियों के लिखित स्मृति ग्रन्थों (शास्त्रों) में वर्णित सत्कर्मों को करना, और अशुभ कर्मों को न करना, वेदों में निर्दिष्ट कर्मानुसार जीवन व्यतीत करना ही धर्म का स्पष्ट लक्षण है।

महर्षि व्यास और मनु ने धर्म का अर्थ

-शेष पृ. १२ पर

क्या मनमानी सोच का नाम धर्म है ?

-सुश्री आचार्या सूर्यदेवी चतुर्वेदा

जन्म- १ अक्टूबर, १९५८ को सोरों, प्रह्लाद पुर (एटा) में पिता श्री लाखन सिंह आर्य और माता श्रीमती त्रिवेणी देवी जी की पुत्री के रूप में

शिक्षा- पाणिनि कन्या महाविद्यालय, वाराणसी में निरन्तर १३ वर्षों तक आचार्या प्रज्ञादेवी जी एवं आचार्या मेधादेवी जी की छत्रछाया में १९८२ तक अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निरुक्त, दर्शन, श्रौतादि ग्रन्थों की अक्षरशः शिक्षा प्राप्त की पुनः सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी से प्राचीन व्याकरण विषय से शास्त्री एवं आचार्य की परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं और १९८३ में 'व्याकरणसूर्या' की उपाधि प्राप्त की।

सम्प्रति- पाणिनि कन्या महाविद्यालय, वाराणसी में ही आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर शिक्षण कार्य में रत।

कृतित्व- शास्त्रानुमोदित वैदुष्यपूर्ण लेखन में आर्य जगत् में सुप्रतिष्ठित। वेद, विज्ञान एवं ज्योतिष पर अनेक खोजपूर्ण निबन्धों का लेखन; दिल्ली, अजमेर, कोटा, सोनीपत, चेन्नै आदि स्थलों पर राष्ट्रीय सेमिनारों और वेद गोष्ठियों में भागीदारी; काशी के पण्डितों की चुनौतियों को स्वीकार कर उन्हें निरुत्तर करना। वैदुष्यपूर्ण और प्रशंसनीय व्याख्यान। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित। कर्मकाण्ड पर आपका पूर्णाधिकार है।

प्रकाशित पुस्तकें- १) अन्तरिक्ष, वसिष्ठ, ब्रह्म आदि विज्ञान, २) कल्याण, सुख, आनन्द के स्रोत, ३) वेदादि सिद्धान्त शङ्का समाधान, ४) त्रिपदी गौ

सम्पर्क- श्री जिज्ञासु स्मारक पाणिनि कन्या महाविद्यालय, महमूरगंज, तुलसीपुर, वाराणसी-२२१०१० (उ.प्र.)
फोन : ०५४२-२३६०३४०

सौविध्य सम्पन्न विकसित कहे जाने वाले आधुनिक युग में जहाँ भौतिक वस्तुओं का विकास हुआ है, जिसकी अभी तक कोई रूपरेखा सुनिश्चित नहीं हो पाई है। आज **'न लिङ्गं धर्मकारणम्'** धर्म का कोई चिह्नः नहीं होता' कहा जाने वाला धर्म, मुँह की पट्टी, पगड़ी, दाढ़ी, कण्ठी, माला, तिलक, शङ्ख आदि को ही धर्म समझा जा रहा है। विडम्बना त यह है कि लोकतान्त्रिक चुनाव की प्रणाली को धर्म समझा जा रहा है। विडम्बना तो यह है कि लोकतान्त्रिक चुनाव की प्रणाली को धर्म के चुनाव में भी स्थापित कर दिया है, जिससे पूरा विश्व अपने-अपने प्रिय धर्म का स्वतन्त्रता से चुनाव कर रहा है, जो कि आठवाँ आश्चर्य ही कहा जा सकता है, क्योंकि मनुष्य से अतिरिक्त अन्य पशु, पक्षी सृष्टि के आदि से प्रदत्त धर्मों में ही जी रहे हैं। ऐसा नहीं हुआ कि घोड़े ने गाय का धर्म स्वीकार किया हो और गाय ने भैंस का धर्म स्वीकार कर लिया हो या भैंस बिल्ली के धर्म को अपना धर्म समझती हो। पर मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो अपनी स्वतन्त्रता का लाभ उठा कर कोई पारसी बनकर प्रसन्न है, तो कोई यहूदी बनकर, कोई जैन और बौद्धों के विचारों को श्रेष्ठ मानता है तो कोई सिक्ख बन रहा है। कोई ईसाई, बहाई को ही सर्वोपरि समझता है, तो कोई इस्लाम को, कोई शाङ्करी भस्म में ही सन्तुष्ट है। सच कहें तो धर्म विषय लौकी, कोंहड़े की सब्जी मण्डी हो गया है।

सभी धर्म एक हैं, मार्ग भिन्न-भिन्न हो सकते है, लक्ष्य सबका एक है, ऐसी टका प्रधान समाज के शिक्षित व्यक्तियों की सोच ने तो धर्म के वास्तविक स्वरूप पर ऐसा आवरण डाला है, जो उठाने पर भी नहीं उठता। ये बुद्धिवादी वे लोग हैं, जो सुख चाहते तो हैं, पर लक्ष्य उनका टका होता है, उसके लिए ही पूरा श्रम होता है। और धर्म के नाम पर मन्दिर, मस्जिद, चर्च आदि के आगे सिर झुका कर **'जय भगवान् की', 'जय हनुमान की'** आदि उद्घोषों को एवं 'प्रभु पाप क्षमा कर दो', 'ईश्वर सबका भला करो', 'अन्धों को आँखें दो' आदि वाक्यों को ही धर्म मानते हैं। ये सिरफिरे लोग ही धर्म निरपेक्षता का झण्डा लिये फिरते हैं। ये वे लोग हैं, जो धर्म का वाच्य मात्र ईश्वर विषय समझते हैं एवं जिन्हें यह बोध ही नहीं कि वे जिन मत-मतान्तरों को धर्म मान रहे हैं, उनमें कोई नास्तिक है, कोई प्रकृतिवादी, कोई ईश्वरवादी है। कोई जीवात्मवादी, कोई मात्र ब्रह्मात्मवादी है और कोई ईश्वर के सहयोगी फरिश्तेवादी हैं। सभी एक दूसरे से भिन्न हैं। अब बुद्धिवादी विचारें-जब सभी मत हैं ही भिन्न, वे एक कैसे समझे जा सकते हैं, एक और चार मिलकर पाँच ही होंगे, एक नहीं। इन विभिन्न मतों को एक कहना व 'धर्म' शब्द वाच्य मानना निकी मूल की भूल है। धर्म रीति-रिवाज तथा निरंकुशता का नाम नहीं है।

धर्म तो पूर्णता प्रदान करने वाला मनुष्य मात्र का आचरणीय वह गुण व विचार है, जो उत्तम व्यक्ति, उदार परिवार, उदात्त समाज एवं उन्नत राष्ट्र को निर्मित करता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारों वर्णों को अपने-अपने कर्मों में संयुक्त रखता है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास इन आश्रमों को मर्यादा प्रदान करता है। धर्म चयनीय वस्तु नहीं, अवश्याचरणीय गुण है। धर्म संज्ञा होती ही तब है, जब धारण किया जाय। जैसा कि व्यास का कथन है-

यः स्यात् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः ॥ -शान्ति १०९/११ ॥

अर्थात् जो धारण करने योग्य है तथा धारण करने में सक्षण है, वही निस्सन्देह धर्म है।

'धर्मेण धार्यते लोकः' चाण. २३४, इस सूत्र में चाणक्य ने धर्म की लोकधारकता

को प्रतिपादित किया है। लोकधारक धर्म अध्यात्म तथा भौतिक उभयविध सुखों, उपलब्धियों का केन्द्र हैं और वह धारणीय धर्म वेद से ही जानने योग्य है, यतेहि वेद ही ज्ञान के आदि ग्रन्थ हैं, कुरान, बाइबिल आदि नहीं। इस प्रसंग में मीमांसा दर्शन के तन्त्रवार्तिककार कुमारिल भट्ट का वचन महत्वपूर्ण है। वचन है-

वेद एव हि सर्वेषामादर्शः सर्वदा स्थितः ॥

-मीमां. कुमा. तन्त्र २०६ ॥

अर्थात् वेद ही सबके लिए सब कालों में आदर्श रूप है। इस प्रकार धर्म विषय में वेद ही सर्वप्रमाण है। धर्म की वेदमूलकता का कथन करते हुए व्यास कहते हैं-

वेदोक्तः परमो धर्मः स्मृतिशास्त्रगतोऽपरः। शिष्टाचीर्णो परः प्रोक्तस्त्रयो धर्माः सनातनाः ॥ -महा. अनुशा.प. १४१/६५ ॥

अर्थात् वेद प्रतिपादित सन्देश परम धर्म है और स्मृति वचनों से हुआ ज्ञान दूसरा र्ध है, तीसरा शिष्टों का आचीर्ण=आचरित धर्म कहा गया है। इस प्रकार ये तीन सनातन धर्म हैं।

धर्म सूत्रकार गौतम महर्षि ने भी वेदों को धर्म का मूल बताया है। यथा-

वेदों धर्ममूलम्। तद्विदां च स्मृतिशीले ॥

-गौ. धर्म. १/१/२

अर्थात् वेद धर्म के मूल हैं और वेदज्ञों को धर्म का मूल बताया है। यथा-

वेदो धर्ममूलम्। तद्विदां च स्मृतिशीले ॥

-गौ. धर्म. १/१/२ ॥

अर्थात् वेद धर्म के मूल हैं और वेदज्ञों की स्मृति व शील धर्मजनक हैं।

वेदविदों का शील कैसा होता है ? इसे बताने वाली शील की परिभाषा भी बड़ी उत्तम की गई है। यथाहि-

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा। अनुग्रहश्च दानं च शीलमेतत् प्रशस्यते ॥

-शान्ति. १२४/६६

अर्थात् मन, वचन, कर्म से समस्त प्राणियों के प्रति **अद्रोहः** =हिंसा का भाव न रखना, **अनुग्रहः** =कृपा, उपकार करना एवं दान देना, ये उत्तम गुण शील कहे जाते हैं।

निष्कर्ष यह हुआ कि धर्म आचरण का नाम है, मान्यता का नहीं। इन आचरणों की प्रेरक वेदोक्त आज्ञाएँ, तद्विदों के स्मृति ग्रन्थ, उनका शील=स्वभाव, व्यवहार आदि हैं। वेद तथा तद्विद् ज्ञानियों के आचार आदि धर्मजनक हैं, इसे मात्र व्यास और गौतम ने ही नहीं माना, अपितु वशिष्ठ[1], आपस्तम्ब[2], याज्ञवल्क्य[3], मनु[4], जेमिनि[5], आदि ने भी इनकी धर्मजनकता को स्वीकार किया है।

लोकोपकारक धारणीय धर्मरूप धर्मप्रेरक वेदोक्त वचन है-

धर्म प्र यजा, ऋ. ३/१७/५, ऐ मानव ! तू धर्म मार्ग पर चल।

माभि द्रुहः, अथर्व. ९/५/४, ऐ जीव ! तू किसी से ईर्ष्या, द्वेष मत कर।

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे, यजु. ३६/१८, हम परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें।

मा गृधः कस्य स्विद्धनम्, यजु. ४०/१, किसी के धन का लालच मत कर।

शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः, ऋ. १०/१८/२, सब शुद्ध, पवित्र, यज्ञमय जीवन बनावें।

अहं गोपतिः स्याम्, साम. १८३५, मैं वेदवाणी व इन्द्रियों का स्वामी होऊँ।

धियो यो नः प्रचोदयात्, यजु. ३/३५, सर्वोत्पादक सविता ईश ! हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग में प्रेरित करें।

यक्षन्ति प्रचेतसः, ऋ. ९/६४/२१, ज्ञानी, विद्वान् पूजित होते हैं।

अहमनृतात्सत्यमुपैमि, यजु. १/५, मैं असत्य को छोड़ सत्य बोलूँ।

मा क्रुधः, अथर्व. ११/२/२०, क्रोध मत कर।

ईजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम्, अथर्व. १८/४/२, यज्ञ करने वाले स्वर्ग=सुख, शान्ति, आनन्द पाते हैं।

ओ३म् क्रतो स्मर, यजु. ४०/१५, हे कर्मशील जीव ! ओ३म् का स्मरण कर।

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति, यजु. उसी सर्वव्यापक महान् परमात्मा को जानकर मृत्यु के दुःख से जीव पार होता है।

मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्, ऋ. १०/५३/६, ऐ जीव ! तू मननशील बन, मनुष्य बन, दिव्यगुण वाली सन्तानों को उत्पन्न कर।

पशून् पाहि, यजु. १/१, पशुओं की रक्षा कर।

वयं स्याम पतयो रयीणाम्, यजु. २३/६५, हम सब धन के स्वामी होवें।

उत त्वा स्त्री शशीयसी, ऋ. ५/६१/६, हे पुरुष ! तुम्हारी स्त्री दुःख को दूर करने वाली है, आदि।

लोकधारक वेद के इन सन्देश वचनों से ज्ञात हो रहा है कि मनुष्य आस्तिक बने, ईर्ष्या, द्वेष रहित हो, ज्ञानी बने, धन-धान्यादि प्राप्त करे। ये गुण ही सुख शान्ति देने वाले हैं। वेद के ये सन्देश सभी वर्णों, आश्रमों व सभी देशों के जनों के लिए आचरणीय हैं, अनुपालनीय हैं। धर्म का संकुचित दायरा नहीं है। धर्म मात्र अध्यात्म नहीं है, व्यापक क्षेत्र है। वेदोक्त धर्म व्यक्ति, देश, काल, परिस्थिति से सम्बन्धित नहीं है। सभी भगवत्प्राप्ति, सद्व्यवहार, बुद्धि, विवेक आदि चाहते हैं। ये सभी उपलब्धियाँ वेदोक्त धर्म के आचरण से ही होंगी। यह समग्रता का आचरण ही वास्तविक कर्मकाण्ड है। कर्मकाण्ड मात्र आहुति देने तक सीमित नहीं है। कर्मकाण्ड की सीमा से ही धर्म का स्वरूप बिगड़ा है।

वेद सन्देशों की भाँति लोकोपकारक स्मृतियों के धर्मप्रेरक वचन हैं-

सत्यपूतां वदेत् वाचम्, मनुः ६/४६, सत्य से पवित्र वाणी बोले।

आचाराल्लभते ह्यायुः, मनु. ४/१५६, उत्तम आचरण से आयु प्राप्त होती है।

स्वाध्यायेनार्चयेत् ऋषीन्, मनु. ३/८१, ब्रह्मयज्ञ एवं स्वाध्याय से ऋषियों की पूजा करे।

सान्ध्यां चोपास्य श्रृणुयात्, मनु. ७/२२३, राजा सन्ध्योपासना के अनन्तर अन्य बातें सुनें।

महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः, मनुः २/२१६,

माता, बहिन व पुत्री के साथ कभी एकान्त में न बैठे।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः, मनु. ३/५६, जहाँ नारियों का सम्मान होता है, वहाँ दिव्यगुण, सन्तान आदि होते हैं।

अभिवादयेत् वृद्धाँश्च, मनु. ४/१५४, वृद्ध जनों का सत्कार, नमस्ते सदा करें। आदि।

इस प्रकार ये धर्मरूप वेदोक्त आज्ञाएँ एवं स्मृति वचन व वेदज्ञ आचरण समस्त विश्व को शान्ति देने वाले लोकसंग्राहक, क्लायणकारक, नित्य, शास्वत, अपरिवर्तन शील हैं। जैसा कि मन्त्र कहता है-

अग्निर्हि देवाँ अमृतो दुवस्यत्यथा धर्माणि सनता न दूदुषत् ॥ -ऋ. ३/३/१ ॥

अर्थात् जैसे मरणधर्मा अग्नि प्रकाश, तेज आदि गुणों को धारण करता है **अथ**=अनन्तर कभी उन गणों को, न **दूदुषत्**= नहीं छोड़ता, वैसे, **विपः**=मेधावी जीव (इसी मन्त्र के पूर्व चरण से अध्याहृत विपः पद है) **सनता धर्माणि**=सनातन धर्मों को नहीं छोड़ता।

तात्पर्य हुआ जैसे अग्नि कभी भी देश, काल, परिस्थितिवश अपने दाहकता धर्म को नहीं छोड़ता, वैसे जीव भी देश, काल, परिस्थिति की सीमाओं मे नहीं बँधता। अपने सनातन धर्मों का प्रयत्नपूर्वक पालन करता है। धर्म की नित्यता बताते हुये महाभारत में कहा है-

धर्मो नित्योपवासित्वम् ॥-अनुशास. १४१/३८ ॥

अर्थात् धर्म नित्य सेवनीय है। अपि च-

नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये। जीवो नित्यः हेतुरस्य त्वनित्यः ॥-उद्यो. ४०/१२, १३॥

अर्थात् धर्म नित्य है, जीव नित्य है, सुख-दुःख अनित्य हैं एवं इस जीव के बन्धन का निमित्त शरीर अनित्य है।

तात्पर्य स्पष्ट है कि जीव तथा जीव के द्वारा किय जाने वाला धर्माचरण, दोनों नित्य हैं। सुख-दुःख तथा बन्धन का निमित्त नित्य नहीं है, क्योंकि धर्माचरण जीव के लिए लाभप्रद है, अतः वह ही नित्य है। धर्माचरण छोड़ने पर दुःख, न छोड़ने पर सुख होता है, अतः सुख-दुःख अनित्य एवं सुख-दुःख का साधन शरीर भी अनित्य है।

जीव को अपरिवर्तनीय आचरणीय वेदोक्त धर्म उसकी उत्पत्ति के साथ प्राप्त हुए हैं। मन्त्र है-

जातः परेण धर्मणा यत् सवृद्धिः सहाभुवः। पिता यत् कश्यपस्याग्निः श्रद्धा माता मनुः कविः ॥ -साम. ९० ॥

अर्थात् जो यह जीव है वह **परेण**= सर्वोत्कृष्ट पूर्ण (**अन्तो वै परम्,** ऐ.ब्रा. ५/२१), **धर्मणा**=धर्म के साथ उत्पन्न हुआ है एवं वृद्धि दिलाने वाले यज्ञादि कर्मों के साथ उत्पन्न हुआ है। उस ज्ञानी जीव का **पिता**= रक्षक अग्नि है उसकी **माता श्रद्धा**=त्य (**श्रत् इति सत्यनाम,** निघ. ३/१०) है तथा उसका, **कविः**=क्रान्तदर्शन, **मनुः**=वेदज्ञान, (**मनोर्ऋचो भवन्ति,** मैं. २१/५) है।

मन्त्र का भाव स्पष्ट है कि उत्पन्न हुए जीव को जन्म के साथ ही ईश्वरोपासना, वेदज्ञान, यज्ञानुष्ठान एवं सत्यभाषणादि धर्म प्राप्त हुये हैं। यह पृथक् बात है कि जीव अपनी अज्ञानता से पालन न करे। जन्म के साथ प्राप्त हुए धर्मों के आचर से प्राप्त लाभ को प्रतिपादित करने वाला मन्त्र है-

पवस्य देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः। वायुमारोह धर्मणा ॥ -साम. ४८३ ॥

अर्थात् हे दिव्यगुण युक्त जीव ! **धर्मणा**= धर्म के द्वारा **आयुषग्**=जीवन भर अपने को पवित्र रख तथा तुझे प्रसन्नता एवं ऐश्वर्य प्राप्त होवे और **तू वायुम्**=प्राणों की साधना को, नीर, क्षीर, विवेक को, **आरोह**=प्राप्त कर।

ऋचा का भाव हुआ कि धर्माचरण मनुष्य को पवित्रता, प्रसन्नता, ऐश्वर्य, आयु, द्विव्यता तथा नीर, क्षीर, विवेक प्रदान करता है। वेदोक्त धर्माचरण की **प्रथम=प्रधान धर्म है**। जैसा कि मन्त्र कहता है-

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। ते हे नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ -ऋ. १/१६४/५० ॥

अर्थात् विद्वान् जन अग्नि परमात्मा से व भौतिक अग्नि से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि करते हैं। सिद्धि का यह कर्म अनादि धर्म है। विद्वान् इस सिद्धि से सुख प्राप्त करते है। पूर्व कल्प के विद्वान् भी प्रवाह से अग्नि परमात्मा तथा भौतिक अग्नि से उपकार लेते आये हैं।

जीव की उत्पत्ति के साथ इन धर्मों का बृहदारण्यकोपनिषद् में भी आलंकारिक रूप से वर्णन किया गया है। परमात्मा ने अपनी रचना की सार्थकता के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्गों में विभक्त होने वाले मनुष्य की रचना की। पर परमात्मा अल्पज्ञ मनुष्य के निर्माण (शरीर संरचना) मात्र से सन्तुष्ट न हुआ, क्योंकि मनुष्य संरचना मात्र से समाज का कार्य चलना असम्भव था। समाज की व्यवस्था तो परस्पर संहारक गुणों से ही सम्भव है, अतः उसने उसके धर्मों को भी रचा। वह धर्म क्या था ? उसका प्रतिपादक वचन है-

यो वै स धर्मः सत्यं वै तत्, तस्मात् सत्यं वदन्तमाहुः, धर्मं वदतीति, धर्मं वा वदन्तं सत्यं वदतीति, एतद्धि एव एतत् उभयं भवति ॥-बृहदा. १/४/१४

अर्थात् जो वह धर्म है वह सत्य ही है। इसलिए सत्य बोलते हुए को **'धर्म बोलता है'** यह कहा जाता है। धर्म कहते हुए को **'सत्य कहता है'** यह कहा जाता है। इस प्रकार सत्य और धर्म दोनों एक ही हैं।

उपनिषद्कार ने वेदोक्त समस्त धर्म को सत्य में ही सन्निहित करके धर्म की प्रथमता व महत्ता बतायी है। वेदादि शास्त्रोक्त धारणीय धर्मों का कोई भी मत, सम्प्रदाय विरोध नहीं कर सकता। **यह वैदिक धर्म ही सत्य, सनातन व पूर्ण धर्म है, जो सम्पूर्ण विश्व के उत्थान का हेतु है**। अविरोधी धर्म की परिभाषा इस प्रकार की गयी है-

अविरोधी तु यो धर्मः स धर्मसत्यविक्रमः॥

अर्थात् जिसका कोई विरोधी न हो वह धर्म ही सत्य का मार्ग होता है।

इस परिभाषा में मात्र वैदिक धर्म ही आ पाता है, अन्य मत मतान्तर नहीं, क्योंकि सभी एक दूसरे की काट करने वाले हैं।

इस प्रकार पूर्वोक्त विश्लेषण से ज्ञात

हुआ कि वैदिक धर्म सृष्टि के आदि से चला आ रहा धर्म है। यह किसी परिस्थिति की देन नहीं है और न अत्याचार, अनाचार के विरोध में बनाया गया नियम कानून है। इसके अतिरिक्त आज जितने भी मत-मतान्तर, सम्प्रदाय धर्म के नाम से जाने जा रहे हैं, वे सभी देश, काल, राजनीति आदि परिस्थिति की उपज हैं। यथा-

१) ४५०० वर्ष पुराना जरदुस्त=पारसी मत महाभारत युद्ध की देन है। युद्ध में सभी विद्वान् विचारक मारे गये, फलतः कालान्तर में यह सम्प्रदाय उठ खड़ा हुआ।

२) ३५०० वर्ष पुराना मूसा व इब्राहिम द्वारा सन्चालित यहूदी मत जरदुस्त के बहुदेवतावाद व पाखण्ड से निकला हुआ सम्प्रदाय है।

३) ३००० वर्ष पुराना चारवाक मत यहूदी मत का उपहास स्वरूप है।

४) २५०० वर्ष पुराना जैन मत चारवाकों के भोग-विलासों को देन है।

५) २५०० वर्ष पुराना बौद्ध मत भी सामाजिक पाखण्ड, हिंसा आदि की उपज है।

६) २००५ वर्ष पुराना ईसाई धर्म यहूदियों के अत्याचार और बौद्धों के आडम्बर से उत्पन्न मत है।

७) १४३५ वर्ष से प्रचलित इस्लाम मत सामाजिक कुरीतियों, नैतिक पतन एवं धार्मिक विसंगतियों का परिणाम है।

८) ५०० वर्ष पुराना सिक्ख सम्प्रदाय इस्लाम के सामाजिक, राजनीतिक अत्याचारों का जवाब है।

९) लगभग २०० वर्ष से प्रसिद्धि प्राप्त बहाई मत ईसाइयों की मदोन्मत्तता, धर्मान्धता की देन है।

१०) इसी प्रकार लगभग ६००० वर्ष पुराना नगड़दादा बना हुआ हिन्दू धर्म जिसकी जन्मना जातिभेद, छुआछूत, श्रद्ध आदि पहचान है, वह वैदिक धर्म का विकार है।

इन परस्पर विरोधी विभिन्न परिस्थितियों ने उत्पन्न प्रकृतिवादी, अनीश्वरवादी, ईश्वरवादी, जीवात्मवादी एवं ब्रह्मवादी विभेदक विचारों वाले मतों को मानवीय धर्म के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। ये तो विश्व को हिंसा की आग में झोंकने वाले मत हैं। धर्म वही हो सकता है, जिसमें ईश्वर, जीव, प्रकृति, तीनों का समन्वय हो। यह एकमात्र धर्म वैदिक धर्म है, धर्म दो, चार नहीं होते।

तात्पर्य यह निकला कि हम धर्म के चयन में स्वतन्त्र नहीं हो सकते। वयन=चुनाव वहाँ होता है, जो अपना न हो, अपने से दूर हो, अर्थात् चुनाव द्वारा परायी वस्तु को अपना बनाया जाता है, अभाव को भाव में बदला जाता है। यह चयन धर्म के सम्बन्ध में नहीं लगाया जा सकता क्योंकि यह धर्म तो जीव को उत्पत्ति के साथ प्राप्त धर्म है, जो जीव का सदा साथ रहने वाला आचरणीय आत्मीय गुण है। 'धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः' इस युक्ति की कोटि में हम न आ जायें, एतदर्थ परमात्मा प्रदत्त धर्म ही सबको स्वीकरणीय है।

वेद प्रतिपादित धर्म को त्याग कर नये मतरूप धर्मों का चयन करना एवं धर्मनिरपेक्ष राज्य, शिक्षा, समाज व्यवस्था भगवत्प्राप्ति व न्याय की कल्पना करना 'हम झूठे हैं, झूठ का आदर करते हैं', इसका द्योतक है।

धर्म के सन्दर्भ में यह भी ध्यातव्य है कि हमारे संविधान का २५वाँ अनुच्छेद जिसमें सभी व्यक्तियों को अन्तःकरण की स्वतन्त्रता और धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान हक होगा, यह कहा गया है, वह बहिष्कार योग्य है।

आये दिन मन्दिर-मस्जिद के हैं झगड़े रहते। दिल में ईंटें हैं भरी, लब पे खुदा होता है॥

सन्दर्भ

१) श्रुतिस्मृतिविहितो धर्मः। तदलाभे शिष्टाचारः प्रमामम्। शिष्टः पुनरकामात्मा॥
-वसि. धर्म. १/४/६॥

२) धर्मज्ञसमय) प्रमाणं वेदाँश्च॥
-आपः धर्म. १/१/१/२॥

३) श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः। सम्यक् सङ्कल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्॥
-याज्ञ. स्मृ. १/७॥

४) मनु. २/६॥ २/१२॥

५) चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः॥ -मीमां, १/१/२॥

...पृ. ८ का शेष

स्पष्ट किया है कि जैसा व्यवहार आप दूसरों से अपने लिये चाहते हो वैसा ही व्यवहार दूसरों के साथ करो, यही धर्म है। यदि यह धर्म सुरक्षित रहता है तो मनुष्य का जीवन भी सुरक्षित रहता है, और यदि यह धर्म नष्ट हो जाता है तो मनुष्य का जीवन भी असुरक्षित हो जाता है। आज मनुष्य स्वयं अपने लिए दूसरों से अहिंसा की यह इच्छा रखता है कि कोई भी मुझे कष्ट न पहुँचावे, मेरी हिंसा न करे, मेरे पैर में कोई कान्टा चुभने न पावे, किन्तु वही व्यक्ति दूसरों के साथ हिंसा का व्यवहार करता है। अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिये दूसरों को कष्ट देने में उसे कोई संकोच नहीं होता है। उसने अपने अहिंसा रूपी धर्म को नष्ट कर दिया, उसकी हत्या कर दी। इसी प्रकार दूसरा व्यक्ति भी अन्य के साथ हिंसा का व्यवहार करता हुआ अपने लिए उससे अहिंसा की अपेक्षा रखता है। दोनों ही व्यक्ति एक दूसरे से अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करने) की इच्छा रखते हैं किन्तु दोनों एक दूसरे के साथ हिंसा झूठ का व्यवहार करते हैं, एक दूसरे के पदार्थों की चोरी करते हैं, धोखा देते हैं। इस प्रकार नष्ट किया हुआ धर्म दोनों को ही मार रहा है अर्थात् नष्ट कर रहा है। **(धर्म एव हतो हन्ति)**

सुरक्षित धर्म से जीवन सुरक्षित :- आज सारे संसार में यही हो रहा है कि मनुष्य एक दूसरे के साथ दुर्व्यवहार कर रहा है और स्वयं भी दूसरों के दुर्व्यवहार से दुःखी हो रहा है। इसी से तो धर्म के विनाश से मनुष्य का विनाश हो रहा है। इसलिए सावधान करते हुए प्राचीन ऋषियों ने कहा था कि धर्म को नष्ट न करे, धर्म को सुरक्षित रखे, जिससे सुरक्षित धर्म ही हमारी रक्षा करेगा। यदि मनुष्य दूसरों से अपने लिये सत्य व्यवहार चाहता है तो वह स्वयं दूसरों के साथ सत्य बोलेगा तो दूसरे भी उसके साथ सत्य बोलेंगे। जिससे सत्य रूपी धर्म के सुरक्षित रहने से मनुष्य भी सुरक्षित रहेगा, उसे धोखा नहीं होगा। यही धर्म की सुरक्षा में मनुष्य की सुरक्षा है। **(धर्मो रक्षति रक्षितः)**

गरुकुलों की वर्तमान समय में उपयोगिता

-आचार्य डॉ. धारणा याज्ञिकी

मनुष्यलोक, पितृलोक और देवलोक की चर्चा करते हुये बृहदारण्यकोपनिषद् में देवलोक को तीनों लोकों से सर्वोत्तम बताया है। इस देवलोक की प्राप्ति का साधन विद्या है और विद्या की प्राप्ति आचार्य के सान्निध्य में ही भली प्रकार प्राप्त की जा सकती है। शास्त्रों में निर्धारित किया गया कि निश्चित अवस्था में बालक, बालिकाओं को आचार्यकुल या गुरुकुलों में अध्ययन के लिये अवश्य बेजा जाना चाहिये। बालक बालिकायें ब्रह्मचर्यव्रतपूर्वक गुरुकुलवासकर विद्याध्ययन करें।

समाज व राष्ट्र श्रेश, सुयोग्य, सबल और सक्रिय व्यक्तियों से समृद्ध होता है। तथा शिक्षा सामाजिक राष्ट्रीय समृद्धि की आधार शिला होती है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने अमरग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के अन्त में स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में शिक्षा की परिभाषा करते हुये लिखा कि शिक्षा जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय तादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें, उसको शिक्षा कहते हैं। अर्थात् शिक्षा व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करती है।

व्यक्ति जन्म से अज्ञानी होता है। शिक्षा द्वारा बच्चों को योग्य, श्रेष्ठ बनाने का प्रयत्न किया जाता है। शतपथ ब्रहाद्रमण का वचन उद्धृत करते हुये महर्षि लिखते हैं कि मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद, वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे, तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। इसी विषय में आगे लिखा है इसीलिये मातृमान् पितृमान् शब्द का ग्रहण उक्त वचन में किया है अर्थात् जन्म से ५वें वर्ष तक बालकों को माता ६ वर्ष से ८वें वर्ष तक पिता शिक्षा करें और नौवें वर्ष के आरम्भ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके आचार्यकुल में अर्थात् जहाँ पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करने वाली हों, वहाँ लड़के और लड़कियों को भेज दें। शिक्षा के लिये मात्र विद्यालय या गुरुकुल भेज देना ही माता पिता का उत्तरदायित्त्व नहीं है। अपितु शिक्षणालय में भेजने से पूर्व बच्चों को सदाचार, सद्गुण, आज्ञापालन आदि धर्माचरण की शिक्षा निरन्तर देकर बच्चों को प्राथमिक शिक्षा में श्लोकोादि कण्ठस्थ कराते रहना चाहिये।

जिज्ञासु बालक आचार्य के समीप ज्ञान की भट्टी में तपकर कुन्दन बनने के लिये जाता है। अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त के मन्त्र में कहा-

आचार्यऽउपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः। तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्त्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः॥

अर्थात् आचार्य उस समीप लाये बालक को उसी प्रकार धारण करता है। जिस प्रकार माता शिशु को गर्भ में धारण करती है। आचार्य तीन रात्रि पर्यन्त अपने उदर में (समीप) आश्रम में रखता है। जिसे शिक्षित होने पर देवलोग देखने आते हैं। शिष्य आचार्य के अधीन उसी प्रकार रहता है। जैसे शिशु का माता के गर्भ में रहना। माता अपने शिशु की सर्वात्मना देखभाल करती है। आचार्य भी अपने शिष्य की पूर्ण देखभाल करता है। तीन रात्रि का अर्थ है। अज्ञान की तीन रात्रि। ज्ञान, कर्म, उपासना में स्नान करने पर शिष्य दर्शनीय हो जाता है, तभी देवलोग देखने आते हैं।

सर्वांगपूर्ण व्यक्तित्व की नींव का काम गुरुकुल शिक्षण पद्धति का है। समाज की सम्पूर्ण समृद्धि और सुव्यवस्था का यदि कोई कारण है तो वह है गुरुकुल शिक्षा पद्धति। जहाँ आचार्यों के संरक्षण में बालकों का श्रेष्ठ निर्माण होता है। राष्ट्रसेवा, जनसेवा, यज्ञ, संयम, नियम, तप, त्याग का पाठ पढ़कर सादा जीवन उच्च विचार का आदर्श स्थापित करता है। अष्टांग योग की साधना में रत बालक अपनी शारीरिक शक्तियों का संचय करता है। आज की शिक्षा पद्धति में छात्र की न शारीरिक शक्तियाँ प्रखर हैं और न ही बौद्धिक विकास। स्कूल, कॉलेज के विद्यार्थियों में चारित्रिक पतन, अनुशासनहीनता मनोविकार का बोझ, क्रूरता, स्वेच्छा चारिता, आलस्य, अकर्मण्यता का भाव देखा जा सकता है। आधुनिक शिक्षा में शिक्षित छात्र किन्चिन्मात्र भी परिवार, समाज व राष्ट्र के प्रति समर्पित नहीं होता। गुरकुलीय शिक्षण व्यवस्था में आध्यात्मिक अभ्युत्थान को विशेष स्थान प्राप्त है। तथा गुरुकुलीय शिक्षा में शिक्षित विद्यार्थी आस्तिकता के बोध से सामाजिक, राष्ट्रीय, वैयक्तिक बुराइयों से सदैव दूर रहता है। और जो ज्ञान, मन, बुद्धि एवं शक्ति से प्रखर न बना सके। उसके अन्दर उच्च संस्कारों का वपन न कर सके, वह शिक्षा किस काम की।

गुरुकुलीय शिक्षा में दीक्षित विद्यार्थी न केवल आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति करता है। अपितु सामाजिक जीवन का उपदेश-

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं तथा पूर्वे संजानाना उपासते॥

-ऋ. १०/१९/२

को पूर्णरूपेण स्वीकार करता है।

गुरुकुल परम्परा से विद्यार्जन करने वाले वेदादि ग्रन्थों के साथ साथ पाणिनि का व्याकरण, पतन्जलि का योग, चरक सुश्रुत का औषधशास्त्र, मनु याज्ञवाल्क्य के संविधान में पारंगत हो जाते हैं। आधुनिक शिक्षा में एक साथ इन विषयों को प्राप्त करना खुपुष्पवत् है। हमारे जीवनाधार ग्रन्थ वेद, उपनिषद्, आरण्यक, रामायण, महाभारत, गीता आदि से दूर रहने के कारण अराजकता अन्याय का सर्वत्र बोलवाला है।

आज यदि हम अपने बच्चों में बड़ों के प्रति व्यवहार में शिष्टता में कमी देखते हैं, समूह में घुलमिलकर रहने में असर्म पाते हैं। अपनी और अपने आसपास की सफाई में उदासीनता देखते हैं। तो उसका एकमात्र कारण गुरुकुलीय शिक्षा का अभाव है। तथा प्रतियोगी परीक्षाओं की मार से व्यक्तित्व निर्माण और सामाजिक व्यवहार में उपेक्षा देखी जा सकती है।

आज शिक्षित की परिभाषा बदल गई है। आज उसे शिक्षित समझा जाता है। जो कोई अच्छी नौकरी प्राप्त कर ले। यह आधुनिक शिक्षा तथा गुरुकुलीय शिक्षा में यह सबसे बड़ा अन्तर है।

गुरुकुलीय शिक्षा मौखिक, व्यावहारिक ज्ञान को बल देती है। मौलिक सूत्रों को कण्ठाग्रकर हस्तामलकवत् ज्ञान को सुरक्षित रखती है। जबकि आधुनिक शिक्षा प्रणाली कापी पुस्तकों के बोझ से परीक्षोपरान्त भुला देने वाली है।

गुरुकुल शिक्षा में सामाजिक समानता का दृष्टिकोण है। सभी छात्रों को एक साथ एक व्यवस्था में रेहना सिखाया जाता है। यहाँ न कोई राजा है न रंका। गुरुकुल में सभी शिष्य आचार्य की सन्तान हो जाती हैं। सादगी, कम साधन, कम व्यय की शिक्षा गुरुकुलीय शिक्षा है। गरीब अमीर का भेद गुरुकुलीय शिक्षा मिटा देती है। परन्तु आधुनिक शिक्षा गरीब और अमीर की खाई को गहराती है। अपना इतिहास योगीराज श्रीकृष्ण और सुदामा, द्रुपद और द्रौणाचार्य की गहरी धनिष्ठ मित्रता से सदैव गौरवान्वित है। आज के शिक्षण संस्थानों में पढ़ने वाले गरीब छात्र अमीर छात्र केदबाव में सदैव विद्यालय छोड़ने को मजबूर या भयाक्रान्त कुण्ठित रहते हैं।

देश में एक तरु जहाँ बरसाती कुकुरमुत्तों के समान आज गली मोहल्ले में शिक्षा के नाम पर नित नये शिक्षा केन्द्र खुल रहे हैं। जिनके प्रबन्धनकर्त्ता निरक्षर भट्टाचार्य पैसे कमाने की मशीन हैं। जिन्हें शिक्षा की गुणवत्ता की दूर दूर तक गन्ध नहीं।

शिक्षा के इन केन्द्रों से बड़े बड़े प्रमाणपत्र तो दिये जा रहे हैं। किन्तु नैतिक मूल्यों का अभाव सर्वथा दृष्टिगोचर होता है। क्योंकि येन केन प्रकारेण अच्छे अंकों को प्राप्त कर अधिकाधिक अर्थोपार्जन कैसे किया जा सकता है। यह आज की शिक्षा का मात्र उद्देश्य है। जहाँ उदरपूर्त्ति अनैतिक कार्यों से भी हो जाती है। तो उन्हें फिर नैतिक मूल्यों से क्या सरोकार ? छात्र बस व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय मानवीय गुणों के प्रति असंवेदनशील तथा भौतिक संसाधनों को प्राप्त करने में सतत प्रयत्नशील है। छात्र को जब तक शिक्षित होने का मूल उद्देश्य नहीं बताया जायेगा। तब तक चाहे किसी भी विषय को पढ़ा दिया जाये। वह कभी भी उपयोगी सिद्ध नहीं होगा।

गुरुकुल के शान्त वातावरण में रहने वाले विद्यार्थी की शिक्षा का उद्देश्य उसके अन्दर के उदान गुणों का आविर्भाव, आचार, विचार, आहार, विहार की पवित्रता, शारीरिक, मानसिक, आत्मिक स्वस्थता पर पूर्ण बल देकर आचार्य द्वारा सर्वशक्ति सम्पन्न विद्यार्थी का निर्माण करना है। जबकि आज की शिक्षण व्यवस्था में संस्कार और नैतिकता का कोई स्थान ही नहीं है।

विभिन्न स्थानों से आये छात्र गुरुकुल वास में एक साथ निवास हुये **मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे** को अपने जीवन में सीखते हैं। और गुरुकुलीय परिवेश से बाहर निकलकर समाज में आत्मवत् सर्वभूतेषु का पाठ चरितार्थ करते हैं।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में छात्रों को घर से बाहर शहर तथा ग्रामों में स्थित शिक्षण संस्थानों में जाने के लिये अभिभावक वाहन की व्यवस्था करते हैं। जिससे उन पर धवनिप्रदूषण, वायुप्रधूषण में वाहन से निकलने वाला धुँआ और पों पों की आवाज सहायक हो वातावरण को दूषित करते हैं।

गुरुकुलीय शिक्षण व्यवस्था में एक समान विषय पढ़ने की बाध्यता नहीं। एक समान विषय पढ़ने की बाध्यता ने विद्यार्थी में अधययन के प्रति अरुचि पैदा की है। यदि क्रमशः विषयों को पढ़ा पढ़ाया जाये तो उस विषय के प्रति लगन और उत्कण्ठा बनी रहेगी। विषय की नीरसता नहीं होगी। और न ही बच्चे पढ़ाई से मुँह मोड़ेंगे।

आधुनिक शिक्षा लोक हितकारी कम, औद्योगिक और शोषणमूलक अधिक है। यही कारण है कि उच्च पदासीन लोग पैसे की अन्धी दौड़ में अनैतिक कार्यों में लिप्त पाये जाते हैं।

श्रद्धावान् लभते ज्ञानम् जिसे ज्ञान प्राप्त किया जाये, उसमें श्रद्धा व नम्रता का भाव होना आवश्यक है। श्रद्धा रखने का अभिप्राय **"गुरूपदिष्टवाक्येषु विश्वासः श्रद्धा"** यह विश्वास व्यक्ति को श्रद्धालु बनाता है। उसे ही विद्या की वास्तविक प्राप्ति होती है। आज के वातावरण में विद्या व्यापार हो गई है। इसीलिये छात्र भी उद्दण्ड को गये हैं। गुरु में श्रद्धा तो दूर उनके प्रति सम्मान भी नहीं है।

यहि देश ज्ञान विज्ञान में सबसे अग्रणी था। तभी मनुमहाराज घोषणा करते हैं-

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

समस्त भूमण्डल के लोग अपने अपने चरित्रों की शिक्षा यहाँ आकर ग्रहण करते थे। आज के शिक्षा केन्द्रों की सहशिक्षा से कितना सामाजिक अधोपतन हो रहा है। हम सब देख रहे हैं। जहाँ निर्लज्जता की पराकाष्ठा है। इसके विराम का एकमात्र उपाय गुरुकुलीय शिक्षण व्यवस्था है। क्योंकि यजुर्वेद के सन्देश में बताया गया है कि आचार्य अपने समीप आने वाले प्रत्येक विद्यार्थी से कहता है-

वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धाम श्रोत्रं ते शुन्धामि। नाभिं ते शुन्धामि मेद्रं ते शुन्धामि पायु ते शुन्धामि चरित्राँस्ते शुन्धामि॥ -यजु. ६/१४॥

हे शिष्य ! मैं (आचार्य) वेद और वेदांगों की शिक्षा से देह, इन्द्रिय, अन्तःकरण और मन की शुद्धि, पवित्रता, शरीर की पुष्टि करता हूँ। इस प्रकार छात्र का समग्र शोधन करके आचार्य समाज को सुपुर्द करता है, तो लेशमात्र भी उसमें अनैतिक कार्यों का बीजारोपण नहीं हो सकता।

गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली की उपर्युक्त विवेचना पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि आज भी छात्र के व्यवस्थित जीवन को विकसित करने, व्यक्ति और समाज के बीच परस्पर समरसता के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित करने, सहयोग, समर्पण, सेवा के जीवन का उच्च आदर्श प्रस्तुत करने, त्याग, तपस्या, संयम के ज्ञान से तपःपूत जीवन जीने आध्यात्मिक उन्नति से मनोबल, चरित्रबल पूर्णतः निष्कलंक रखने में गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली उतनी ही उपादेय है, जितनी पूर्वकाल में थी क्योंकि गुरुकुलीय शिक्षा के मूल सिद्धान्त वैदिक हैं। वेद सार्वभौतिक, सार्वकालिक हैं। अतः यह शिक्षण पद्धति सदैव उपयोगी है।

हिन्दु समाज का कायाकल्प आर्य समाज द्वारा ही सम्भव

ए.ओ.ह्यूम सन् १८८२ में जब सरकारी सेवा से मुक्त हुए तो अपने सेवा-काल में प्राप्त अनुभवों पर विचार करने लगे। उनका जीवन-चरित्र लिखने वाले सर विलियम वडरबर्न उनके अनुभवों के विषय में इस प्रकार लिखते हैं-

'सेवा-मुक्त होने से कुछ पहले ह्यूम के पास ऐसे प्रमाण एकत्रित हो गये थे कि जिनसे उसे विश्वास हो गया कि हिन्दुस्तान में एक गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो चुकी है, जिसका अति भयंकर परिणाम निकल सकता है।' सर विलियम बडरबर्न आगे लिखते हैं-

The evidence that convinced him of the immence of the danger was contained in seven large..... volumes containing a vast number of enteries.....from over thirty thousand different reporters.....

(महान् भय के प्रमाण जो उसे मिले, वह सात बृहत्.....खण्डों में रखे गये थे। उन प्रमाणों में लगभग तीस सहस्र सूचनाएँ सम्मिलित हैं।)

इन सात खण्डों में साधु-सन्त, महात्माओं और उनके चेलों के लिखे पत्र हैं, जो देश के धार्मिक नेता थे। उनका अविश्वास नहीं किया जा सकता था। इन प्रमाणों की उपस्थिति में सर बडरबर्न लिखते हैं-

Hume felt that a safety valve must be provided for the suppressed discontentment of the masses and something must be done to relieve their dispair, if a disaster was to be averted.....

(ह्यूम यह अनुभव करता था कि जनता में दबे हुए असन्तोष को निकलने का स्थान होना चाहिए। उनकी निराशा को दूर करने का कुछ यत्न करना चाहिए, जिससे भयंकर दुर्घटना से रोकी जा सके।)

सर ह्यूम सरकारी नौकरी में सन् १८४९ में आये थे और सन् १८८२ में सेवा-मुक्त हुए थे। वे हिन्दुस्तान के उस ऐतिहासिक काल में भारत सरकार में रहे थे, जिसमें सन् १८५७ का अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध भयंकर विद्रोह हुआ था और उस विद्रोह के उपरान्त अंग्रेज सेनाशाही ने जनता से भीषण प्रतिशोध लिया था। उस काल के अनुभव ही ह्यूम के मस्तिष्क पर बोझा बने हुए प्रतीत होते हैं।

परन्तु जो कुछ ह्यूम को अपने सेवा-काल में विदित हुआ था, वही कुछ मैकॉले और उसके समान विचार वाले अंग्रेज विद्वानों को पहले ही अनुभव हो चुका था। उन्होंने भी भारत के प्रशान्त सागर की तह के नीचे गहराई में एक प्रबल धारा बहती देखी थी और उन्होंने इस धारा को दबा देने का प्रयत्न अपने ढंग से किया था।

इस प्रतिशोध का स्वरूप दो प्रकार से दृष्टिगोचर हुआ था। एक ओर राजा राममोहन राय की ब्रह्म समाज के रूप में, तथा दूसरी ओर मैकॉले साहब की सरकारी शिक्षा के रूप में। इसी विरोध का एक अन्य रूप हुआ, सर ह्यूम द्वारा स्थापित इण्डियन नैशनल कांग्रेस।

हिन्दू समाज के प्रशान्त सागर की गहराई में चल रही धारा को अंग्रेज विद्वानों ने देखा था और समझा था। वह धारा थी भारतीय संस्कृति और धर्म की, जिसे लम्बा मुसलमानी राज्य भी मिटा नहीं सका था।

अंग्रेजी शासन के बंगाल में स्थापित होते ही, अंग्रेज विद्वान् अधिकारियों को यह जानने की चिन्ता लग गयी थी कि जो कुछ इस्लामी राज्य मोराकों से अफ़गानिस्तान तक कुछ ही वर्षों में सम्पन्न कर सका था, वह हिन्दुस्तान में अपने सात सौ वर्ष के राज्य-काल में क्यों नहीं कर सका? उनकी खोज का यह परिणाम निकला कि यह भारत की प्राचीन संस्कृति और धर्म की धारा थी, जो इस्लाम के यहाँ असफल होने में कारण बनी। इसको विनष्ट करने में ही अंग्रेज सरकार को अपनी भलाई दिखाई देने लगी थी।

यह ठीक है कि राजा राममोहन राय के विचार पूर्वोक्त अंग्रेजों के कहने से नहीं बने थे. वे उनके अपने बाल्यकाल में मुसलमानों से सम्पर्क के कारण बने थे। साथ ही ये विचार बने थे 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के सेवा-काल में उनके एक योग्य अंग्रेज अधिकारी की संगत से। राजा साब ने उपनिषदादि ग्रन्थों का अपने विशेष दृष्टिकोण से अध्ययन भी किया था, परन्तु जब उनके विचार ब्रह्म समाज में मूर्त होने लगे तो अंग्रेजी सरकार को राजा राममोहन राय अपनी योजना के अनुकूल प्रतीत हुए। उन्हें वे उस तरंग की सहायता करते प्रतीत हुए, जिससे सरकार भारतीय सांस्कृतिक धारा का विरोध करना चाहती थी। अतः सरकार इसमें सहायक होने लगी।

ब्रह्म समाज की स्थापना सन् १८२८ में हुई थी। इस आन्दोलन के विषय में और राजा साहब के विषय में महात्मा गाँधी की जीवनी लिखने वाले श्री प्यारेलाल लिखते हैं-

he did not raise the standard of revolt against the British rule.

(उनका स्वतन्त्रता के लिए अत्यन्त प्रेम होने पर भी उन्होंने ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा ऊँचा नहीं किया ।)

ब्रह्म समाज के विषय में श्री प्यारेलाल लिखते हैं-

The church (Brahma Samaj) was to be closed to none and was to serve as a universal house of prayer open to all men without distinction of colour, cast, nation or religion.....

In the gift deed the founder laid down that no religion shall be reviled or slighted or contemptuously spoken of or alluded to.

(ब्रह्म समाज का मन्दिर किसी के लिए भी बन्द नहीं था । यह सार्वजनिक प्रार्थना का स्थान था, जो सब मानवों के लिए था और जहाँ बिना जाति, रंग, समुदाय तथा मजहब के भेद-भाव के सब आ सकते थे ।)

(इसके संस्थापक ने अपने दान-पत्र में लिखा था-

किसी मजहब की निन्दा नहीं की जायेगी तथा बुरा-भला नहीं कहा जायेगा । किसी के प्रति घृणा नहीं की जायेगी और न ही संकेत में कही जायेगी ।)

अंग्रेज नीतिज्ञों को कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि यह ब्रह्म समाज भी उस गहराई में चलने वाली धारा का एक प्रकार से विरोध ही कर रही है । अतः ब्रह्म समाज को उनका समर्थन और सहायता प्रस्तुत हो गई और सन् १८२८ से लेकर, हिन्दुस्तान में ब्रिटिश राज्य के अन्त काल तक, यह उनको प्राप्त रही ।

इसी अर्थ मैकॉले की सरकारी शिक्षा की योजना थी । मैकॉले ने एक समय अपने पिता को एक पत्र में लिखा था-

The effect of this education on the Hindoos is prodigious. No Hindoo, who was received our English education, ever remains sincerely attached to his religion.

(इस शिक्षा का हिन्दुओं पर प्रभाव आश्चर्यजनक होगा । कोई भी हिन्दू, जिसने यह अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर ली है, कभी भी निष्ठापूर्वक अपने धर्म से सम्बद्ध नहीं रह सकता ।)

ब्रह्म समाज १८२८ में स्थापित हुई । अंग्रेजी सरकारी शिक्षा १८३५ में चालू की गई और ह्यूम साहब की इण्डियन नैशनल कांग्रेस सन् १८८५ में स्थापित की गई । तीनों तरंगें जान-बूझ कर अथवा अनजाने में हिन्दू समाज की आभ्यान्तरिक सांस्कृतिक धारा को नाश करने में संलग्न रहीं । जितना-जितना इनका बल बढ़ता गया, सांस्कृतिक धारा का विरोध, ये उतने ही बल से करती नहीं ।

परन्तु इस तरंग का विरोध भी हुआ । सन् १८७५ में इस तरंग के विरोध-स्वरूप महर्षि स्वामी दयानन्द ने बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की । वैसे स्वामी दयानन्द ने इसका आरम्भ पाखण्ड-खण्डिनी ध्वजा के नीचे सन् १८७१-७२ में कलकत्ता में विचार किया गया और सन् १८७५ में बम्बई में इसकी स्थापना की गई ।

श्री प्यारेलाल (महात्मा गाँधी के जीवन-चरित्र में) आर्य समाज के विषय में लिखते हैं-

Swami Dayanand with his generation had noted with deep inner anguish the on slaught on the one hand of superficial European rationalism and, on the other hand, of Christainity whcih coming as a hand-maid of Western imperialism, had disrupted their national solidarity, bred asepticism and schism when it entered a family and undermined their own religion without providing an adequate substitute for it.

(उस समय की पीढ़ी के साथ स्वामी दयानन्द ने यह अति दुःख के साथ अनुभव किया था कि एक ओर बाहरी यूरोपीय बुद्धिवाद ने, और दूसरी ओर ईसाईयत ने, जो देश में विदेशीय साम्राज्यवाद के साथ आया था और यहाँ की समाज में फूट डलवा रहा था, भारतीय परिवार पर आक्रमण कर, यहाँ के मजहब को विनष्ट कर दिया था और उसका स्थानापन्न प्रस्तुत नहीं किया था ।)

स्वामी दयानन्द द्वारा स्थापित आर्य समाज के विषय में यही महाशय लिखते हैं-

In marked contrast with the reformist Brahma Samaj was the Arya Samaj-the Church militant within the Hindoo fold-bearing to Hinduism what Protestanism is to the Roman Catholic Church.....it was a revivalist movement with return to the pure ancient Vedic faith, culture and institution as its goals.

(सुधार करने वाली ब्रह्म समाज से सर्वथा विपरीत आर्य समाज थी । यह संगर्ष प्रिय संस्था थी । हिन्दुओं के भीतर इसका स्थान वही था, जो प्रोटैस्टैण्ट समुदाय का रोमन कैथॉलिक के प्रति था.....यह पुनरुद्धार करने वाला आन्दोलन था । यह पुनः प्राचीन वैदिक मत को, इसकी सभ्यता और रीति-रिवाज को चाहता था ।)

यही अंग्रेज नीतिज्ञ नहीं चाहते थे । वे नहीं चाहते थे कि विचारों के वे तत्त्व जीवित और जाग्रत रहें, जिन्होंने इस्लाम जैसे बलशाली समुदाय का मुख मोड़ दिया था । अतः पूर्ण अंग्रेजी सरकार, इसका विरोध करने पर उद्यत हो गई ।

भारतवर्ष में विशाल हिन्दू समाज, जिसके पाँव दृढ़ता से अपनी प्राचीन संस्कृति और धर्म में जमे हैं, काल की विपरीत गतियों का सफलतापूर्वक सामना करती चली आती थी । भारतवर्ष पर गिद्ध की-सी दृष्टि रखने वाले विदेशीय, हिन्दू समाज के पाँव उखाड़ने में यत्नशील हो गए । एक दूषित संयोग इस्लाम, ईसाईयत और अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त आस्था-विहीन हिन्दुस्तानी घटकों का बन गया और इस संयोग का विरोध करने के लिए आर्य समाज हिन्दू समाज की कायाकल्प करने की चेष्टा करने लगी ।

इस समय भी भारत देश में दो प्रबल विचार तरंगों की टक्कर हो रही है । इस टक्कर यथार्थ और वैचारिक स्तर पर संघर्षशील रहेगा ।

ఆర్య సమాజము

రామగిరి, నల్లగొండ

ఆర్య సమాజ సంస్థాపకులైన

మహర్షి దయానంద సరస్వతి

(1824-2024)

ద్విశతజయంతి ఉత్సవాలు మరియు

నల్లగొండ ఆర్య సమాజ్ శతాబ్ది ఉత్సవాలు 1924-2024

భారతదేశ జాతి మూఢ నమ్మకాలు, అంటరానితనము, ఫలిత-జ్యోతిష్యములఅనేక జాడ్యముల మధ్యలో నలిగి విదేశీయులపాదాక్రాంతం క్రింద బ్రతుకుచున్న సమయంలో, విదేశీ మతస్థులైన ఇస్లామ్, క్రైస్తవులప్రచారకులు హిందువులకు ఎన్నో విధాలుగా ప్రలోభ పెట్టి వారి మతములలో కలుపుకొనుచు వారి జనసంఖ్యను పెంచుకొనుటకై ఎన్నో షడయంత్రములు చేయబట్టిరి. ముస్లిములు దేశ సంపదను తమ దేశమునకు తరలించుచూ మరియు మందిరాలను కూలగొట్టుచు రాజ్యము ఏలుచుండిరి. ఎంతో విలువైన సంస్కృత గ్రంథాలను దహనం గావించిరి. బ్రిటిష్ పరిపాలనలో వారి మేధావులైన 'మాక్స్‌ముల్లర్' విలియమ్ జేమ్స్, టిబి మెకాలే గార్ల ద్వారా భారతీయ గ్రంథాలైన వేదాలను మరియు భారతీయ చరిత్రను కొన్ని చేర్పులు, మార్పులు చేసి వక్రీకరించి వారి సంస్కృతి, వారి వాఙ్మయమే గొప్పదని చాటిచెప్పి పాఠ్యాంశములో పెట్టి మన విద్యార్థులకు అధ్యాపకుల ద్వారా చదివింప సాగిరి. తుదకు భారతీయ మానస పుత్రులగు భారత జాతి వేదములను విస్మరించ సాగిరి.

ఇట్టి సమయములోనే దయానంద సరస్వతి గారు 12 ఫిబ్రవరి 1824 నాడు కర్షన్‌జీ-అమృతబాయిలకు టంకార గ్రామము నందు ఔదీచ్య బ్రాహ్మణ కుటుంబమున గుజరాత్ రాష్ట్రంలో జన్మించిరి. దయానందునికి బాల్యంలో పెట్టిన పేరు మూలశంకర్. తన 14వ సంవత్సరాల వయస్సులో శివరాత్రి పర్వదినం రోజున ఉపవాసం ఉండి ఊరిబయట గల శివాలయమునకు తండ్రితో వెళ్ళి ఆ రాత్రి జాగరణ చేశాడు. తెల్లజాము వరకు భక్తులందరు గుడిలో నిద్రించుచుండగా మూలశంకరుడు మేల్కొని ఉండెను. అట్టి సమయములో ఒక బిలం ద్వారా ఒక చిన్న ఎలుక వచ్చి శివలింగంపై తిరుగుతూ భక్తులు పెట్టిన నైవేద్య పదార్థములను భుజిస్తూ ఎంగిలి చేస్తూ శివలింగంపై తిరగ సాగెను. ఇట్టి దృశ్యాన్ని మూలశంకరుడు చూసి ఇది త్రిశూలధారి మహాదేవుడేనానని సందేహించెను ? భక్తులు పెట్టిన నైవేద్యాన్ని ఈ చిన్న ఎలుక అశుద్ధం చేస్తుంటే ఏమి పట్టించుకొనుట లేదు. ఇతడు అసలు శివుడేనానని సందేహం వచ్చి తండ్రిని లేపి అడుగగా కర్షన్‌జీ ఇది పార్థివ శరీరమని, అస్సలు శివుడు కైలాసగిరిలో ఉండునని తెలిపెను. మూలశంకరునకి ఇది నిజం కాదని అనిపించింది. ఆ తదుపరి కొంత కాలం తరువాత తన ప్రియమైన చెల్లెలు అనారోగ్యంతో అకస్మాత్తుగా చని పోవటం జరిగింది. మళ్ళీ ఆ తదుపరి కొంత కాలం తరువాత తనను ఎంతో ప్రేమించే చినాన్న గారు మరణించారు. మరణించిన సమయంలో మూలశంకరడు ఎంతో ఏడ్చాడు. అందరూ మరణించాల్సిందేనా అని సందేహం వచ్చింది. ఇందుకు ముక్తి లేదా ? అమృతత్వం

గురించి మరొక్క ప్రశ్న మనస్సులో ఉదయించెను. సత్యశివున్ని మరియు అమరత్వ తత్వమును అన్వేషణ కొరకై తన 22 సం॥లవయస్సులో గృహ త్యాగం చేశాడు. గుళ్ళు, గోపరాలు, కందరాలు, అడవులు, పర్వతాలు, నదులు తిరుగుతూ అన్ని చోట్ల సాధువులద్వారా వంచింపబడి జీవితంలో నిరాశ పడుచున్న సందర్భంలో పూర్ణానంద సరస్వతి గారి దర్శనమైనది. ఆయనచే మూలశంకరుడు సన్యాస దీక్ష తీసుకుని దయానంద సరస్వతిగా మారెను. ఆ తదుపరి స్వామి విరాజనంద సరస్వతి గురువు గారి దగ్గర చేరి దయానందులు అతి అల్ప సమయంలోనే సంపూర్ణ, సనాతన వైదిక వాఙ్మయమంతా అభ్యసించి గురుదక్షిణ రూపంలో గురువు గారికి తన జీవితమంత వేద-ధర్మ-ప్రచారం చేస్తానని ప్రతిజ్ఞ చేశారు.

జాతి సముద్ధరణకై ధర్మపరిరక్షలో అగ్రగామిగా ఉంటూ 1875లో ముంబాయిలో ఆర్య సమాజాన్ని స్థాపించి పాఖండ-ఖండని అనే పతాకాన్ని చేతపట్టి వేద ధర్మ ప్రచారాన్ని ప్రారంభించారు. వేదప్రచార నిమిత్తము మరియు దేశ స్వాతంత్ర్యమునకై దేశమంతట పర్యటించారు. అనేక రకాలమూఢసమ్మకాలను, విరుద్ధమత పండితులను శాస్త్రార్థంలో పరాభవించటంతో పాటు వేదధర్మాన్ని ఉద్ధరించటం ద్వారానే విశుద్ధమైన భారత సంస్కృతిని రక్షించుట సాధ్యమని చాటి చెపుతూ మరోవైపు స్వాతంత్ర్యానికి నాంది పలికారు. స్త్రీ శిక్ష, గోరక్ష, శుద్ధి అందోళన, శాస్త్ర సంరక్షణ, వేదభాష్యము మొదలగు ఎన్నో కార్యక్రమాలు చేస్తూ జీవితాంతము వైదిక ధర్మ ప్రచారం చేశారు. విష ప్రయోగపు వలన దీపావళి రోజున సంధ్యాసమయంలో 1883 దేహత్యాగము చేశారు.

వారు ప్రారంభించిన పనులను వారి శిష్యులు మరియు అనుయాయులుకైన ఆర్య సమాజికులు ఆనాటి నుండి ఈనాటి వరకు అహర్నిశలు శ్రమిస్తూ మహర్షి దయానంద సరస్వతి గారి కలలను సాకారం చేయడానికై కంకణం కట్టుకున్నారు. ఇదే క్రమములో నల్లగొండ ఆర్య సమాజము "కృణ్వంతో విశ్వమార్యం" అనే ఉద్దేశాన్ని పురస్కరించుకొని వేద ప్రచారం, సాహిత్య ప్రచారం, గోసంరక్షణ వివిధ గురుకులాలకు సహాయం అందజేయడం, అర్హులైన వారికి ఉపకారం చేయడం, యువతకు ఆత్మరక్షణకై కరాటే సదుపాయాలు కలుగజేయడం, యువతీలకు భరతనాట్యంలాంటి ఎన్నో కార్యక్రమాలను ఇప్పటికి చేయుచున్నది.

హర్షదాయక విషయమేమిటంటే నల్లగొండలో ఆర్య సమాజము స్థాపించి 100 సం॥లు పూర్తి అయినది. ఇట్టి సందర్భంలో మార్చి 1, 2 3 తేదీలలో మూడు రోజులు పాటు జాతీయ స్థాయి మహాసభలను మరియు సమాజ సంస్థాపకులైన స్వామి దయానంద సరస్వతి గారి ద్విశత జన్మ జయంతి ఉత్సవాలను ఘనంగా నిర్వహించుటకు నిశ్చయించినాము. ఈ కార్యక్రమాలను 200 అగ్నికుండాలతో యజుర్వేదీయ యజ్ఞమును ప్రారంభించి 2వ తేదిన మహాసభలు ప్రారంభింపబడతాయి. మార్చి 2వ తేదిన మహాసభలను ప్రారంభించటానికి విశ్వప్రసిద్ధ యోగ గురువులైన స్వామి రామ్‌దేవ్ గారు విచ్చేయుచున్నారు. నల్గొండ పట్టణ ప్రజలందరూ మరియు గ్రామీణ ప్రాంతాలకు సంబంధించిన జిల్లా ప్రజలందరూ కుల, మత, బేధాలు లేకుండా రావలసిందిగా మనవి చేయుచేయుచున్నాము. ప్రత్యేకంగా యువత కదిలి రావాలని, జాతీయ సముద్ధరణకై కదం తొక్కాలని, సహకారం అందించాలని కోరుచున్నాము. మీ సహకారము, మీ భాగస్వామ్యము మా బలము. కావున ఈ పావనమైన అగ్నిలో సమిధిగా మీవంతు సహకారాన్ని అందజేస్తారని కోరుచూ... -ఆర్య సమాజం రామగిరి, నల్లగొండ

ఆర్య సమాజము, రామగిరి, నల్లగొండ
మహర్షి దయానంద సరస్వతి ద్విశత జన్మజయంతి మరియు
ఆర్య సమాజం నల్లగొండ శతజయంతి ఉత్సవాలు
వ్యవస్థ మరియు ఆహ్వాన కమిటీలు

పట్టణ అలంకరణ కమిటీ	: కె.సంపత్, పిల్లి.క్రిష్ణ, ఎమ్.శ్రవన్
సభావేదిక, ప్రాంగణము, అలంకరణ కమిటీ	: సిహెచ్.వేదమిత్రి, రామ నర్సింహ్మ రెడ్డి
యజ్ఞ నిర్వహణ కమిటీ	: కె.సూర్యనారాయణ
అతిథుల ఆహ్వానం కమిటీ	: రవీందర్ రావు
వ్యాస రచన పోటీల నిర్వహణ కమిటీ	: ఎస్.రవిప్రసాద్ రావు, కె.నాగేందర్
భోజనాలు-ఫలహారాలు కమిటీ	: జి.కోటయ్య, కె.సింహాద్రి, కె.సత్తయ్య
అతిథుల వసతుల నిర్వహణ ట్రాన్స్‌పోర్ట్ కమిటీ	: వి.సాయి బాబా, కె.సత్తయ్య
మొమెంటోల సేకరణ కమిటీ	: జి.కోటయ్య, సాయి బాబా
యజ్ఞ యజమానుల (సమకూర్పు) ఆహ్వానులు	: జె.నాగరాజు, యల్లయ్య
ప్రెస్ (మిడియా) కమిటీ	: జె.ధ్రువ, ఎమ్.శోభన్ బాబు
విరాళాలు సేకరణ కమిటీ	: కె.శంకరయ్య, ఎ.లక్ష్మినర్సు, వి.సాయిబాబా
ఫోటోల సేకరణ కమిటీ	: ఎ.లక్ష్మి నర్సింహ్మా
సభా ప్రాంగణ పరిశుభ్రతా కమిటీ	: కె.సత్తయ్య, సి.హెచ్.హరిప్రసాద్

మత తత్వము-స్వామి దయానంద సరస్వతి

ఆర్య సమాజ సంస్థాపకులైన మహర్షి స్వామి దయానంద సరస్వతి నిర్యాణము చెంది 106 సం॥ పూర్తియైనది. యుగపురుషుడు స్వామి దయానంద సరస్వతి గారు చెప్పిన మాటలను నేరి సందర్భంలో విశ్లేషణ చేయడం ఎంతైన అవసరం. 120 సం॥ క్రితం మానవుని సర్వాంగీణ వికాసమునకై, అన్ని కాంతులను కలుగ జేయుటకై వారిచ్చిన సందేశం నేటికిని ఎంతో ప్రాముఖ్యం కలిగింది. దేశము మరియు జాతి వేలాది సంవత్సరములు నుండి బానిసగా ఉండటానికి ఏకైక కారణం మత తత్వము మరియు కుల తత్వమని స్వామి దయానంద స్పష్టం చేశారు. ఇవి ఉన్నంత వరకు మానవుల మధ్య ఈర్ష్యా, ద్వేషము, శత్రుత ఉంటుంది. మత తత్వము మానవ జాతిని నిలువుగా చీల్చినది. మతము వేరని ధర్మము వేరని స్వామి దయానందుడు స్పష్టం చేశాడు. మతం ఎన్నిటికీ ధర్మం కాజాలదు. ధర్మము మానవీయ విలువలను పెంచుతుంది. కావున మానవతను ధర్మమన వచ్చును. మానవీయ విలువలను సంరక్షించుటకై వ్యష్టి సమిష్టి గతంగా చేయవలసిన కర్తవ్య కర్మములను ధర్మమందురు. అందరు చేయదగినదే ధర్మము. ఒక వ్యక్తి అభిప్రాయం ధర్మం కాదు. ధర్మం సార్వజనీన సార్వభమికమైనది. కావున అందరికి అది ఒక్కటే. భిన్నమైన అభిప్రాయాలు ప్రత్యేకంగా వ్యక్తుల యొక్క అభిప్రాయాల వలన మతాలు పుట్టినాయి. మనుషులను విడదీసేది మతం. మనిషిని మనిషితో కలిపేది ధర్మమూ. అహింసా, ప్రేమ, సోదర భావము, సదాచారము, సమానతా యథాయోగ్య వ్యవహారము. సహన శీలత సార్వ భౌమిక సార్వకాలిక ధర్మము యొక్క అంగములు. ఇవి మనుషులను కలిపేవి. వేదములు ఈ ధర్మమునే చాటి చెప్పుచున్నాయి. స్వామి దయానందుల వారు కూడ వీటి గురించి నొక్కి చెప్పారు. సర్వేభవంతు సుఖినః, సర్వేసంతు నిరామయం-వేద సందేశము గల ఈ దేశంలో మత కలహాలెం దుకు ? సమస్త ప్రాణి కోటిని రక్షించుటకై కర్తవ్యకర్మలను నిర్ధారించిన సంస్కృతి సభ్యత గల ఈ దేశంలో మనుష్యులలో మనుష్యుల రక్త దాహమెందుకు. ధర్మము సౌభ్రాతృత్వము, సఖ్యము కొరకున్నది. మతము రక్తపిపాసను సృష్టిస్తుంది. కావున స్వామి దయానంద సరస్వతి తన అమర గ్రంథము "సత్యార్థ ప్రకాశము"లో మందిర మసీదులు ఉపాసనా గృహాలు కావు. అని కలహగృహాలని హెచ్చరించారు. మత మతాంతరాల ద్వార ఇప్పటికే చాలకీడు జరిగిందని, అవి ఇలాగే కొనసాగినచో ఇంకెంతో కీడు జరుగునని చెప్పారు. మిథ్యామత మలాంతరాల విరుదవాదం తొలగినంత వరకు మానవులకు సుఖశాంతి లభింపదని స్పష్టం చశారు. మహాభారత కాలం నుండి వచ్చిన ఈ కుష్టురోగం తొలగింపబడినచో సమస్త నాశణానికి దారి తీయునని ఆయన హెచ్చరించారు.

మన సంస్కృతి సభ్యతలలో సహన శీలతకు, ఉదార స్వభావానికి ప్రముఖ స్థానము ఉండటం వలన భిన్నమైన అభిప్రాయాలను వ్యక్తం చేసుకోవడానికి పూర్తి అవకాశం ఉండేది. సత్యాసత్యములను నిర్ణయించుటకు చర్చ వేదికలు కూడ ఉండేవి. మనకు వ్యతిరేకమైన భావాన్ని కఠోరమైన హింసాత్మక ప్రవృత్తితో అణచుటను మన సభ్యత సంస్కృతి అనుమతించదు.

దౌర్జన్యము దోపిడి చేసి సమాజంతో అలజడి సృష్టించే అసమాజిక అరాజక శక్తులనుకూడ జాతీయ జీవన స్రవంతిలో కలుపుకొనుటయే మన సంస్కృతి యొక్క ముఖ్య ఉద్దేష్యము. "బ్రతకండి బ్రతకనివ్వండి" అనేది మన మూల మంత్రము. జీవిస్తూ జీవించుటకై అనగా సహజీవనానికి అవకాశమిచ్చే సభ్యతగల ఈ దేశంలో మనుష్యులు రక్తపిపాసులుగా మారటం సమంజసమేనా ? ప్రాణి హింసను కూడ పా.....శమిచ్చిన ఈ దేశంలో జీవితము దుర్భమైనపుడు మనిషి మనిషిని మతపిచ్చితో చంపుట ఎంత వరకు సమంజసము ?

మన సంస్కృతి మత కలహాలకు ఏ మాత్రం ఆస్కారం ఇవ్వ లేదని చరిత్ర ద్వారా స్పష్టమగుచున్నది. విశ్వామిత్రుడు కులాలకు మతాలకు వ్యతిరేకించి, కులమతాలను రూపుమాపి విభిన్న వర్గాలకు సంబంధించిన వారినందరిని జాతీయ సాంఘిక జీవన స్రవంతిలో మిలితం చేసి, నూతన సమాజ సంరంభమునకు నాంది పలికాడు. మానవీయ విలువలు గల సంఘ రచన క్రమముల శ్రీరామచంద్రుడు కూడ అడవులలో నివసించే విభిన్న వర్గాల వారికి మానవతా హక్కులు ప్రసాదించి జన నాయకుడయ్యాడు. రాముడు హిందువు కాదు, హిందువుల నాయకుడు కాడు. ఆయన మానవతామూర్తి. వారి అభిప్రాయాలు సర్వజనులకు ఉపయోగకరమైనవి. కావున శ్రీరామచంద్రుడిని ఒక దేశానికి ఒక ప్రాంతానికి, ఒక జాతికి పరిమితం చేయడం సముచితం కాదు. ఆరంభం నుండి రెండు వర్గాలున్నాయి. ఆర్యులు దస్యులు శ్రమ జీవులు, ఆకర్మణ్యులు అని చెప్పవచ్చు. వర్గ సంఘర్షమున్నప్పటికీ దస్యులకు, వారి వికాసానికి సమానమైన అవకాశము మన సంస్కృతి ఇచ్చింది. కావున భగవంతుని పేర విభిన్న మతాలను సృష్టించుకొని ఒకరితో ఒకరు కలహించుకొను సమంజసమైనది కాదు. మతాభిప్రాయాలను రెచ్చగొట్టి మత కలహాలను సృష్టించే ఏ వర్గమైన సరే, కఠోరంగా ఖండించాలి. మానవ మానవ విలువలకు మత కలహాలకు ఏ మాత్రం సంబంధము లేదు. కావు మత రాజకీయాలను ఖండించాలి.

బేగం శహబాను కేసులో ప్రభుత్వము మత గురువులకు లొంగటం, మత గురువులను ప్రోత్సహించుటకు రాజ్యాంగంలో మార్పు చేయటం సిగ్గు చేటు. ఇటువంటి నిర్ణయాలు మతరాజకీయాలను ప్రోత్సహించి, విషబీజాలను నాటుతుంది. ఈ విషబీజాలను ప్రభుత్వం నాటినా ఇతర ఏ వర్గం వారు నాటినా అది మానవతకు శత్రువే. కావునా మానవతావాదులందరూ దీనిని ఖండించాలి. భగవధ్యానంను భగవంతుని ఈ సృష్టిలో ఎక్కడైనా చేయవచ్చును. అల్లాహ మరియు రాముడు శాంత్రి ప్రదానం చేయక పోయినచో అలజడులు సృష్టించుటకు అనుమతివ్వరు మహాపురుషులు అందరూ శాంతి ప్రేమ సభ్యతల కొరకే ఉపదేశ మిచ్చారు కాని, కలహాలకు కాదు.

మహాపురుషుడగు స్వామి దయానంద సరస్వతి మతాలను రూపుమాపాలని స్పష్టంగా ఉద్ఘోషించారు. వారు ధర్మం పేరిట పాఖండమును, మతాలను పోషించి ప్రోత్సహించే వారిని కఠోరంగా ఖండించారు. మహమ్మదీయ, క్రైస్తవ మతాల అవైజ్ఞానికతను ఖండించి నట్లే హిందుత్వం యొక్క అవైజ్ఞానికతనుకూడ ఖండించారు. స్వామి దయానంద సరస్వతి తనను తాను ఎప్పుడు హిందువనుక లేదు. కావున కలహాలకు దారి తీసే మతాలన్నింటినీ ఖండించారు. అన్ని వర్గాల వారితో స్వామి దయానంద గారికి సత్సంబంధాలు ఉండేవి. ఆర్య సమాజ మొదటి కార్యవర్గంలో "హాజిఉల్లారహమతులాఖా" ఒక సభ్యుడు. బొంబాయి ఆర్య సమాజం కొరకు మొదటి దానిమిచ్చిన మహానుభావుడితడే. ఆర్య సమాజ నియమాలను కూడ లహోర్‌లోని ఒక ముస్లిం నహోదరుడి ఇంట్లో దయానందుడు రూపొందించారు. 1866లో దేవబంద్‌లో స్థాపింపబడిన ముస్లిం విద్యాలయానికి మొదట దానం రూపాయలు 450/- స్వామి దయానంద ఇచ్చారు. ఇప్పుడికీ అక్కడి శిలాఫలకం మీద స్వామి దయానంద నరన్వతిని "రహబర్-ఎ-ఆజమ్" అని సంభోదించుట జరిగింది. స్వామిజీ చికిత్స కూడ ఒక ముస్లిం, సహోదరుడే చేశాడు.

దేశం మతకల్లోల్లాలతో నతమత మగ్గుచున్న నేటి సమయంలో ఆర్య సమాజం మరియు మానవతా వాదులందరు కలసి కట్టుగా తమ బాధ్యతను నిర్వహించవలసిన సమయమాసన్నమైనది. మత కలహాల వల్ల వందలాది అమాయకులు ప్రాణాలు కోల్పోవటం అతి ధారుణంగా ఉంది. సహోదర భావంతో ప్రక్కప్రక్కనే నివసించే హిందూ ముస్లిం సహోదరులు మత రాజకీయాలకు గురియై మానవుల రక్తపిపాసులుగా మారటం అతిశోచనీయంగా ఉంది. కావున స్వామి దయానంద సరస్వతి గారన్నట్లుగా, మానవతా విలువల ఆధారంగా మానవీయ విలువలు పెంచే సమాజమును స్థాపించుటకై అందరు సహకరించాలి. - ఇట్లు

-విఠల్ రావ్ ఆర్య, - సభ ప్రధాన్,

వర్ణాశ్రమాలు - కులవ్యవస్థ కాదు

-శ్రీ విఠల్‌రావు ఆర్య

మను మహర్షి కులాలను నిర్మించి హెచ్చు తగ్గు తారతమ్య భేదాలను నిర్మించాడని ఉన్నత కులాలు వారు నిమ్నకులాల దారిద్ర దోపిడి చేసే విధానము నిర్మించాడని ఒక ప్రబలమైన వాదన ఉంది. కావున మనువు సంఘ ద్రోహి అని చెప్పుచున్నారు. మనువు నిర్మించిన వ్యవస్థయే ఆర్థిక దోపిడిని కూడ ప్రారంభించిందని అంటున్నారు. కొందరు వాదిస్తున్న పై అంశాలను నేటి సందర్భములో పరిశీలించ వలసిన అవసరము ఎంతైన ఉన్నది. ప్రత్యేకముగా స్వేచ్ఛా స్వాతంత్రము ప్రజాస్వామ్యము ఆస్తి హక్కు అవసరమని కమ్యూనిష్టు దేశాల ప్రజలు పోరాడుతున్న ఈ తరుణంలో వర్ణాశ్రామములు గురించి చర్చించడము అనివార్యము. కమ్యూనిష్టు దేశాలలో కుల, మత రహిత మరియుదోపిడిని సమాజాన్ని నిర్మించడానికై మార్క్సు సిద్ధాంతమును అనుసరించి ఎంతో కృషి చేసినప్పటికి పునఃనిర్మాణము పేరుతో తిరిగి ఆస్థి హక్కును ఇవ్వ బోవుచున్నారు. రష్యాలో గల మతాలన్నింటిని గత డెబ్బది సంవత్సరాల పరిపాలనో తూడ్చి పెట్టామని చెప్పుకున్నప్పటికి, అజరేబేజాన్‌లో జరిగిన మత ఘర్షణలో అది సత్యం కాదని నిరూపించింది. మార్క్సిమ్-లేని సిఫ్‌బ్ద వ్యవస్థలో ప్రజలకు స్వేచ్ఛా స్వాతంత్ర్యము లభించనందుకే ప్రత్యేకముగాదేశము యొక్క ఆర్థిక వ్యవస్థ అంతర్జాతీయ స్థాయిలో దెబ్బ తిన్నదని తిరిగి వెరిస్ట్రోయిత మరియు గ్యాస్‌నోస్ట్‌ను ప్రవేశ పెట్టవలసి అవసరము వచ్చినదని రష్యాధినేత శ్రీ గార్బ్‌బేవ్ అంటున్నారు. ఇది మార్క్సిష్టు వ్యవస్థ తిరోగమనమా, లేదా పురోగమనమూ వారేతేల్చి చెప్పాలి. ఆస్థి హక్కును ప్రత్యేక ముగా ఉత్పాదన సాధనాలను ఆస్థిహక్కు భాగంగా ఇచ్చుటకై నిర్ణయించడము వెట్టుబడి వ్యవస్థ వైపు ప్రయాణిస్తున్నట్లు అగుపిస్తుంది. ఈపరిస్థితుల్లో దోపిడి లేని సమాజ వ్యవస్థను ఎలా నిర్మించగలరు ? మార్క్సిష్టు వ్యవస్థ పేరుతో డెబ్బది సంవత్సరాల పరిపాలనలో ప్రజలకు స్వేచ్ఛా స్వాతంత్ర్యము అందించలేక పోయారని నిర్వివాదమైన సత్యము. అయితే స్టేట్‌లెస్ సొసైటిని నిర్మించు మార్గము ఏది ? ఈ సందర్భములో బారతీయ మహానుభావులు ప్రత్యేకముగా మనువు లాంటి వారు ప్రతిపాదించిన సిద్ధాంతాలను పక్షపాత రహితంగా సమీక్షించవలసిన అవసరము ఎంతైన ఉంది. ప్రస్తుతము మన సమాజములో కనిపిస్తున్న కుళ్ళునుచూచి దీనికంత మనువే కారణమని చెప్పటము వారు ప్రతిపాదించిన సిద్ధాంతాలను ఉపేక్షించడము సమంజసము కాదు. మానవ జాతి అభ్యున్నతికై దోపిడి లేని సాంఘిక వ్యవస్థను నిర్మించుటకై జేదా-ధారితా సిద్ధాంతము మనువు ప్రతిపాదించారు. కాలాంతరములో చాలామంది తమ స్వార్థం కోసము తన స్వంత అభిప్రాయాలను మనువు పేరుతో ఆయన గారు రచించిన స్మృతిలో జోడించి మనుస్మృత్తిని కలుషితము చేసినారు. వెట్టుబడి దారి వర్గం వారు సంఘ వ్యవస్థ గల పట్టును కోల్పోకుండ దోపిడి వ్యవస్థ నిర్మించి కార్మిక వర్గమును నిరంతరముగా అణగ దీసి దొక్కుతూ ఉంటారని మార్క్సు అన్నట్లు భారతదేశంలో కూడ మనువు ప్రతిపాదించిన సాంఘిక వ్యవస్థను ప్రక్కన నెట్టి తమకు అనుకూలమైన ఆర్థిక, సాంఘిక సంబంధాలను ఒక పరిమితమైన పరిధిలో మను ఇత్యాధి శాస్త్రాలలో జోడించి కలుషితం చేశారు. మరియు ఒక తిరుగులేని సైద్ధాంతిక ఆధారాం నిర్మించుకొన్నారు. ప్రజల మధ్యగల ఆర్థిక, సాంఘిక సంబంధాల వ్యవస్థే ముఖ్యమైనది. కావున వత్తిడి లేకుండ ప్రజాస్వామ్య పద్ధతిలో స్వేచ్ఛా స్వాతంత్ర్యమును కల్పిస్తూ మనువు రాజనియామాన్ని మను నియమాన్ని ప్రతిపాదించారు. మరియు మనిషి వ్యక్తి గత అభ్యున్నతికై శారీరక మానసిక .... వ్యక్తిగత నియమము కూడ ప్రతిపాదించారు. వ్యక్తి నియమాలు సంఘ నియమాలు పరస్పర పూరకమయ్యేటట్టు నిర్మించిన వ్యవస్థయే మను వ్యవస్థ.

This is a system of internal democracy. ఇది సంపూర్ణ ఆంతరిక స్వేచ్ఛాను కలిగించే ప్రజాస్వామ్య పద్ధతి మరియు స్టేట్‌లెస్ సొసైటిని నిర్మించుటకై దోహద పడే వ్యవస్థయే వర్ణాశ్రమ వ్యవస్థ.

వర్ణమనగా కులము కాదని గ్రహించాలి. వర్ణమని శబ్దము వృధాతువు నుండి పుట్టింది. వృధవర్ణే అనగా ఎన్నుకోవుట కావున దీనిని the choosen path of a mission ఎన్నుకోవలసిన మార్గము అని చెప్ప వచ్చును. పుట్టుకతో అందరూ సమానమే అందుకే శాస్త్రాలలో జన్మనా జాయాతే శూద్రః తరమణా ద్విజఉచ్యతే. i.e. By birth every one is born a SHUDRA it is only through section that he or she qualifies for twice born. It is only after qualifying for a certain discipline that one becomes a Brahmin etc. even this qualification is not rigid. Promotion to higher Varna as an insentive and demotion to a lower Varna as punishment keep the society in ferment. This we see that varna means to choose a mission and has nothing to do with colour or caste or racial superiority.

శుద్రోబ్రాహ్మణతామేతి బ్రాహ్మణశ్చైతి శూద్రతామ్। క్షత్రియాజ్జాతమేవంతే విద్యాద్వైశ్యాత్ తథైవ చ॥ మనువు

వర్ణము ఎన్నుకోవలసిన అయినందువలన తన యోగ్యతను అనుసరించి ఏ మార్గమైన ఎన్నుకోవచ్చును. Varma is just like designation ఒకడు ఆక్షాంక్షను అనునరించి, శ్రమించి డాక్టరు, ఇంజనీయర్, ప్రొఫెసర్ మేనేజర్ మార్గాలలో ఏదానినైనా ఎన్నుకోవచ్చును. కాని యోగ్యతను విశ్వవిద్యా లయాలు ప్రకటించినట్లు ఒకరి యోగ్యతను గుణకర్మ స్వభావాన్ని అనుసరించి నిర్ణయించు టకై ఒక వ్యవస్థ అవసరము. ఆ రోజుల్లో ఇటువంటి వ్యవస్థను గురుకుల ద్వారా నిర్వహించేది. నేడు యూనివర్శిటీ ద్వారా నిర్వహించుచున్నారు. కాని ఈ వ్యవస్థ పాక్షికమైనది. చదువు యోగ్యత తప్ప గుణ కర్మ స్వభావ యోగ్యతను మాత్రము వరిక్షించు టము లేదు. కావున ఏ విషయములోనైనా ఫలితాలు సరియైన విధముగా రావడం లేదు.

విశ్వవిద్యాలయాల ఉప కులపతులపై అదుపు తప్పినపుడు నిర్మించబడిన సాంఘిక నియమాలకు వ్యతిరేకముగా ఉపకులపతి యోగ్యత లేకున్న తను కొడుకున ఉప కులపతిగా నియమించటం, ప్రొఫెసర్ తమ కొడుకును ప్రొఫెసర్‌గా నియమించటం, ఫ్యాక్టరీ మేనేజరు తను కొడుకును మేనేజర్‌గా నియమించటం మిలటరీ కమాండర్ తన కొడుకును కమాండర్ గాని నియమించడం జరిగితే అది దురదృష్టకరం. ఇటువంటి పద్ధతిని వేదముగాని, మనువుగాని, ప్రతిపాదించ లేదు. మరియు యోగ్యత గుణకర్మ స్వభావాన్ని అనుసరించి ఒక హోదా ఇవ్వమన్నారు. ఏ దేశంలోనైనా, ఏ సంఘములోనైనా సంపూర్ణ సమాజము సమతుల్యంగా నడువటానికై భిన్న స్వభావంగల వర్ణాలు పనిచేస్తు ఉంటాయి. దేశంలోనే సమస్త మానవులకు ఒకే యోగ్యత ఒకే స్వభావం ఉండదు. ఇది చారిత్రక సత్యము. అనుకున్న అనుకోక పోయినా భిన్నయోగ్యత, స్వభావం గల వర్ణాలు సమాజంలో ఉంటాయి. అనేది కూడ చారిత్రక సత్యము, నేడు కమ్యూనిష్టు దేశాలలోగాని, ఇతర దేశాలలోగాని 1) మేధావి వర్ణం (వైజ్ఞానికులు, డాక్టర్లు ఉపాధ్యాయులు, రచయితలు), 2) మిలటరీ వర్ణము మరియు రాజకీయ పరిపాలన వర్ణము. 3) పొలంలో గాని ఫ్యాక్టరీలలో ఉత్పత్తి వ్యవస్థ చేయు వర్ణం. 4) పై పనులు చేసే వారికి సహకరించే వర్ణము అను నాల్గు వర్ణాలుంటాయి. వీటినే భారతీయ భాషలో క్షత్రియ, వైశ్య, శూద్ర అని అంటారు. వీరిని బలవంతముగా ఒక ప్రత్యేకమైన పని చేయమని ఎవరూ ఎవరి మీద రుద్ద లేదు. అదివారువారి యోగ్యతను అనుసరించి ఎనుకున్న మార్గము. వ్యవస్థ దృష్ట్యా వారికి హోదాలు యోగ్యతను అనుసరించి ఇవ్వటం జరుగుతుంది. ఇదే వర్ణ వ్యవస్థ. బ్రాహ్మణ, క్షత్రియ, వైశ్య, శూద్ర అనేవి హోదాలు (designation) అది యోగ్యతను అనుసరించే ఇవ్వవలసి వస్తుంది. కాని పుట్టుకతో ఇవ్వటానికి రాదు. ఈ వ్యవస్థకు మౌళిక సూత్రము అందరికి చదువుకోవటానికి మానమైన అవకాశాన్ని కల్పించాలి. ఆర్య సమాజ స్థాపకుడైన స్వామి దయానంద సరస్వతి తన అమర గ్రంథమైన "సత్యార్థ ప్రకాశము" మూడవ సముల్లాసంలో దీనిని స్పష్టంగా ప్రతిపాదించారు.

"ఐదు లేక ఎనిమిదేండ్లు వచ్చిన తర్వాత ఎవ్వరును తను కుమారుని గాని, కుమార్తెను గాని ఇంటిలో ఉంచుకోకూడదని, రాజనీయ మము, జాతి నియము కావలెను. వారు తప్పిన సతిగా తమ పిల్లలను పాఠశాలకు పంపవలెను. పంపని ఎడల వారిని దండించ వలెను. "It is nothing but a system of compulsory education with equal opportunities to all providing equal facilities for their all round dvelopment and to select or to choose the path of their mission.

Their cordinal principles of the vedic society are

NO BIRTH RIGHT : No individual can claim any special right or privilege in society because of his or her birth in a certain family. Right to inheritance, of means of production and distribution, is therefore ruled out. Similarly caste distinctions based on birth are anathema.

VARNASHRAMA : The society will regulate an individuals life through four Varnas, the choosen path of a mission and four Ashrams or a division of life into stages leading to sublimation of an individual self into the universal family. The entire education system is geared to the taskofproducing missionaries as opposed to mercenaries. Every child has to choose one of the three missions; mission to fight against forcesof ignorance aryan (Brahmin), mission to fight against forces of injustice Any Arya (Kshatriya), or the mission to fight against the forces Abhava (Vaishya), only a person failing to qualify for any of these three missions is designated Shudra and is called upon conserve one of these like an apprentice. There is nothing menial or derogatory in the word Shudra.

A similar four part of division oflife into four Ashrama is enjoined. The first approximately twenty five years as Brahmacharya Ashram, or Education and discipline, the second upto fifty years of age approximately

Grahastha Ashrama, married and family life, the third is Vanaprashtha ashram or social work the fourth is sanyas, or a declassed social activist, a moving flame devoted to God and her creation only. The only thing common in all these stages is ashram. Ashram means labour and ashram means brimful of labour (for Varnashram please refer to purusha sukta of Yajurveda 31st chapter)

The net effect of this Varna Ashram system is the negation of the institution of private property. Private ownership of means of production and distribution is in compatible with the Vedic Varnashram Socio-economic system. A person is entitled to a status based on his or her action, talent and aptitude, Guna, Karma and Swabhava. Instead of private ownership, the Vedas prescribe a collective form of living and sharing the sangathana sukta of Reg. Veda, the last chapter, calls upon people to deliberate collectively and to own means of food, water and employment collectively.

The Vedas abound in unjunction against private ownership and this to me is very important. The social System cannot depend on an individual is sense of charity and piety. It has to be so structured that equality ofopportunity and common ownership of means of production and distribution become halmarks of an agalitarian society.

But that does not end the possibility of exploitation. The slightest complacency might land people in exploitative structures and relationships of dominations. So there is constant exhortation to the Aryas (the root, Ri-gata one who is active tioling) to unite and fight against the Basyas the akarma dasyus (Rig. 10.22.8) one who dies not labour is a robber. Out of several hundred such exhartions. I cannot resist the temptation to quote atleast one of them. There is this well known verse of the Regveda, which litarally means in order to establish your political supermacy ***"Kranvanto vishwamaryam Apaghnanto aravanah"*** The toiling masses of the world unite and expropriate the expropriaters.

There is yet another very powerful exhortation. He who has exploited wealth of others find him out, identify him and destroy him with the full fury of lightening. The vedas tolerate no distinction based on colour or caste or race of sex. Perfect equality of sexes in all walks of life is a another salient feature of the Vedic approach. The only distinction leading to confrontation is between Aryas and dasyus between the toiling masses and exploiters. This to me is a clear case of class struggle. The clash is therefore not between the Hindus and the Muslims or between a Christian and a Budhiest but has the toiling masses on the one side and the exploiters, the plunderers, the expropriators, on the other side. God is clearly on the side of the noble, the rational the toiling people when she says; I give this land, this earth to the toiling people.

This is brief is an introduction to the liberation theology of the Vedas. Armed with this leberation message of Vedas The Arya Samaj, A societyof noble, rational and toiling people's movement was launched by Swami Dayanand in 1875. He was poisoned to death at the age of fifty nine in 1883 for his rebellious esousal of liberation message. Very soon the Arya Samaj became a fore runner India's freedom strugle, with monerous educational institutions and centres for preaching this ideology. The Arya Samaj fought a relentless battle against forces of religious bigotory and obscurantism, castism and fetalism, against idol worship and superstition. It inculcated in millions of young minds of indomitable spirit to question authority. It illumined the struggle against Britis coloniaism with martyrs like Bhagat Singh, Ramprasad Bismil, Lala Lajpat Rai, Swami Shradhanand and Swami Sahajananda etc.

मानव धर्म

अग्नि का धर्म दाहकता है वैसे ही मानव शरीर का भी कोई धर्म होना चाहिए, जिससे मनुष्य शरीर को प्राप्त करके भी मनुष्य, मनुष्य कहला सके, इसी को स्पष्ट करते हुए महाभारतकार ने लिखा है कि जो सबका धारण करता हो, जिससे सबकी उन्नति होवे, जिससे प्रजा की रक्षा और उन्नति होती है उसे धर्म कहते हैं। जो प्रजा को धारण करता है, सुरक्षित रखता है, उसे धर्म कहते हैं।

धारणाद् धर्म त्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः ।
यत् स्याद् धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः ॥

जिन कर्मो के द्वारा मनुष्य एक दूसरे की रक्षा करता हैं। वे सभी सद्गुण अहिंसा-सत्य-दया-परोपकारादि कर्म धर्म कहलाते हैं क्योंकि इससे मनुष्य सुरक्षित भी रहते हैं और दूसरों से भी अपने लिए ऐसे कर्मों की अपेक्षा मनुष्य रखते हैं। इसलिये जो प्रजा (जनता) को धारण करे-सुरक्षित रखे वह धर्म कहलाता है।

सामाजिक धर्म :- योग दर्शन में ईश्वर प्राप्ति के साधनों का वर्णन किया है। जो मनुष्य आत्म साक्षात्कार करना चाहतै है उसके लिये सर्व प्रथम अहिंसा-सत्य-अस्तेय (चोरी न करना) ब्रह्मचर्य ओर अपरिग्रह (आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह न करना) इन सबका पालन करना आवश्यक है। **अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः** (योगदर्शन) मनुष्य मन-वचन-कर्म से दूसरों को कष्ट नहीं पहुँचावे, सत्य बोले, सत्य का आचरण करे, दूसरों के पदार्थों को बिना आज्ञा के न लेवे, सदाचार का पालन करे, अनावश्यक पदार्थों का संग्रह न करे ये सभी कर्तव्य उसके लिए आवश्यक हैं। इन सब कर्तव्यों का दूसरों के साथ सम्बद्ध है क्योंकि वह दूसरों से अपने लिये अहिंसा-सत्य-अस्तेयादि चाहता है। जब दूसरों से अपने लिए चाहता है तो ऐसे ही कर्तव्यों का पालन करे, ये ही धर्म के प्रमुख लक्षण है, समाज से सम्बन्धित होने के कारण सामाजिक धर्म हैं। अहिंसा-सत्य-अस्तेयादि को संसार का कोई भी व्यक्ति मानने से मना नहीं कर सकता है, इसलिए धर्म के ये लक्षण सार्वभौमिक हैं। इनका पालन करने पर ही मनुष्य ईश्वर को प्राप्त करने का अधिकारी बनता है तथा इनसे समाज सुरक्षित रहता है, इसलिये नीतिकार ने ठीक ही कहा है कि धर्म के सुरक्षित रहने पर ही मनुष्य समाज सुरक्षित रहता है।

(धर्मो रक्षति रक्षितः ।)

॥ ओ३म् ॥

आर्य समाज नलगोण्डा के शताब्दी समारोह के सन्दर्भ में

आर्य प्रतिनिधि सभा आ.प्र.-तेलंगाना के सौजन्य से

महर्षि दयानन्द सरस्वती की

200वीं जन्मशति समारोह का आयोजन

दि. 1, 2, 3 मार्च 2024 शुक्र, शनि, रविवार

स्थान : आर्य समाज नलगोण्डा का प्रांगण

भव्य रूप से आयोजित

राष्ट्रीय सम्मेलन का उद्घाटन समारोह

दिनांक 2 मार्च 2024 के दिन होगा

मुख्य अतिथि : स्वामी रामदेव जी

200 कुण्डीय यजुर्वेदीय महायज्ञ का शुभारम्भ 1 मार्च 2024

शुक्रवार के दिन सायंकाल 4-00 बजे होगा

इस राष्ट्रीय सम्मेलन में राष्ट्रीय स्तर के आर्य नेता, विद्वान प्रसिद्ध भजनोपदेशक तथा यज्ञ को सम्पन्न करवाने के लिए गुरुकुलों के आचार्य, ब्रह्मचारी आदि पधार रहे है ।

विशेषकर दक्षिण भारत की समस्त आर्य समाजों, आर्य बन्धुओं तथा आर्य परिवारों से और सामाजिक व सांस्कृतिक सुधारवादी परम्पराओं में विश्वास रखने वाले हजारों भाई बन्धु पधार रहे है।

राष्ट्रीय स्तर पर समस्त भाई बन्धुओं से निवेदन है कि अधिक से अधिक संख्या में उद्घाटन समारोह के साथ-साथ समस्त कार्यक्रमों में भाग लेकर स्वामी दयानन्द सरस्वती की 200वीं जन्म शताब्दी को ऐतिहासिक बनाएं ।

आर्य समाज नलगोण्डा

आर्य प्रतिनिधि सभा आ.प्र.-तेलंगाना, हैदराबाद

Date of Publication 2nd and 17th of every Month, Date of Posting 3rd and 18th of every Month
आर्य जीवन 18-02-2024 Registered-Reg. No. D/RNP/HCD-783/2024-26 RNI No. 52990/93

ఆర్య జీవన్
హిందీ-తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక
Editor : Sri Vithal Rao Arya, M.Sc., L.L.B., Sahityaratna.
Arya Pratinidhi Sabha A.P.-Telangana, Sultan Bazar, Hyderabad-500095.
Phone : 040-24753827, 24756983, Narendra Bhavan : 040-24760030.
Annual Subscription Rs. 250/- సంపాదకులు : విఠల్ రావు ఆర్య, ప్రధాన సభ.

To,

आर्य समाज नलगोंडा के शताब्दी समारोह के संदर्भ में

आर्य प्रतिनिधि सभा आंध्र प्रदेश व तेलंगाना के सौजन्य से

महर्षि दयानंद सरस्वती जी की 200वीं जयंती समारोह

राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन

1 मार्च से 3 मार्च 2024 / आर्य समाज नलगोंडा, हैदराबाद

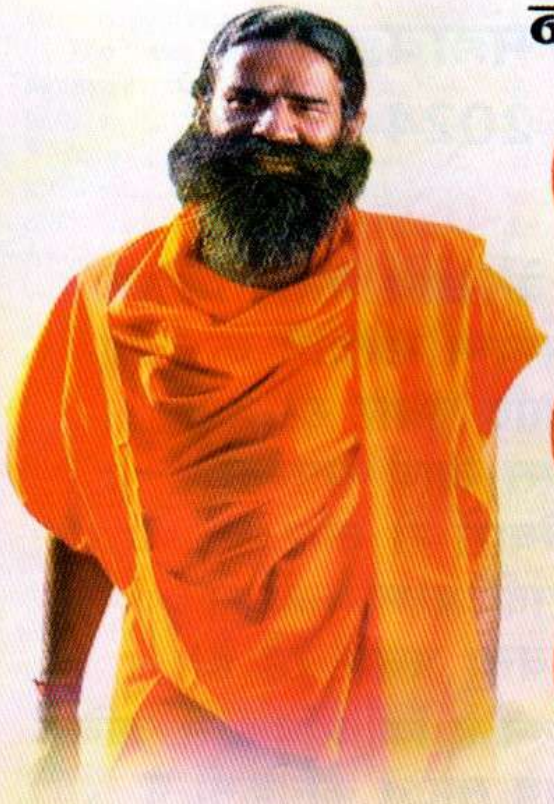

मुख्य अतिथि : स्वामी रामदेव जी
विश्वविख्यात योगगुरु

अध्यक्षता : स्वामी आर्यवेश जी
प्रधान, सार्वदेशिक सभा

प्रो० विठ्ठल राव जी
महामंत्री, सार्वदेशिक सभा

THE VIEWS & THE NEWS PUBLISHED IN THIS ISSUE MAY NOT NECESSARILY BE AGREEABLE TO THE EDITOR.
Editor : Sri Vithal Rao Arya E-mail : acharyavithal@gmail.com, Mobile : 09849560691.
సంపాదకులు : శ్రీ విఠల్ రావు ఆర్య, ప్రధాన సభ, ఆర్య ప్రతినిధి సభ ఆ.ప్ర.-తెలంగాణ, సుల్తాన్ బజార్, హైదరాబాద్-95. Ph : 040-24753827, Email : acharyavithal@gmail.com
संपादक : श्री विट्ठल राव आर्य, प्रधान सभा ने सभा की ओर से आकृति प्रिन्टर्स, चिक्कड़पल्ली में मुद्रित करवा कर प्रकाशित किया ।
प्रकाशक : आर्य प्रतिनिधि सभा, आं.प्र.- तेलंगाना, सुल्तान बाज़ार, हैदराबाद-500 095. Narendra Bhavan Ph : 040 24760030.